नेहरू बाल पुस्तकालय

कृष्ण की कथा

मनोज दास

अनुवादक

ऋचा त्रिपाठी पाण्डेय



राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
NATIONAL BOOK TRUST, INDIA

12 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की स्थापना पुस्तकों के प्रोन्नयन और पठन अभिरुचि के विकास के उद्देश्य से सन् 1957 में भारत सरकार (उच्चतर शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय) द्वारा की गई थी। न्यास द्वारा हिंदी, अंग्रेजी सहित 30 से अधिक भाषाओं व बोलियों में पुस्तकों का प्रकाशन किया जाता है। बच्चों की पुस्तकों का प्रकाशन सदैव से संस्था की प्राथमिकता रही है।



ISBN 978-81-237-8798-5

पहला संस्करण : 2019 (*शक* 1941)

Story of Krishna *(English Original)*
Krishna Ki Katha *(Hindi)*

₹ 205.00

निदेशक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 द्वारा प्रकाशित
www.nbtindia.gov.in

अनुक्रम




nbt.india
एकः सूते सकलम्

1

जुलूस और भविष्यवाणी

बहुत पुरानी बात है। कई वर्षों पहले, यमुना नदी के तट पर ‘मथुरा’ नामक एक अत्यंत ही मनोरम सुंदर नगरी थी। मंदिरों के चारों ओर हरे-भरे बगीचे, यात्रियों व तीर्थयात्रियों के लिए आश्रय और वहाँ की खुशहाल प्रजा के लिए घर थे, साथ ही सदा बहने वाली नदी एवं कई झीलें यहाँ के वातावरण को सुखद बनाती थीं। प्राचीन काल में ‘राजा मधु’ यहाँ का शासक था। राजा मधु ने ही इस नगर की स्थापना की और इस नगरी का नाम उसी के नाम पर पड़ा। मधु का जन्म असुरों के परिवार में हुआ था। असुरों के पास देवताओं जैसी शक्ति और वीरता थी, परंतु वे बड़े अहंकारी व स्वार्थी थे। वे अपनी संतुष्टि या आनंद के लिए बड़ी ही क्रूरता से दूसरों का विनाश करते। यहाँ तक की अपने आनंद के लिए सब कुछ होने के बाद भी वे और अधिक की लालसा करते। वे सभी अच्छी और सुंदर वस्तुओं पर बलपूर्वक अपना अधिकार जमा लेते परंतु स्वयं कभी अच्छा या भला आचरण नहीं करते।

निश्चय ही उनमें से कुछ अच्छे भी थे। भले ही उनकी संख्या बहुत कम थी। उनमें भी नम्रता, दया और ईश्वर के प्रति प्रेम था।

इन्हीं में से एक राजा मधु भी था। वह भगवान शिव का भक्त था। भगवान शिव ने प्रसन्न होकर उसको एक चमत्कारिक त्रिशूल प्रदान किया, जिसे शत्रु पर फेंका जाए तो वह शत्रु का विनाश करके स्वयं अपने स्वामी के पास वापस आ जाता है। भगवान शिव ने मधु को यह चेतावनी भी दी थी कि यह अस्त्र तभी प्रभावशाली रहेगा, जबकि इसका उपयोग दुष्टों के विरुद्ध किया जाए, न कि सच्चे व निर्दोष व्यक्तियों पर। इस प्रकार के अद्‌भुत अस्त्र के प्रयोग से मधु अपने एवं

अपने राज्य के विरोधियों को नदी के दूर छोर पर रोक सका और अपने राज्य में शांतिपूर्वक शासन किया।

एक बार युवा राजा मधु ने असुर कन्या 'कुम्भिनासी' का अपहरण कर उससे विवाह कर लिया। कुम्भिनासी रामायण के खलनायक और लंका के राजा रावण की बहन थी। रावण ने मथुरा को ध्वस्त करने व मधु की हत्या के उद्देश्य से मथुरा पर चढ़ाई कर दी। परंतु कुम्भिनासी ने रावण के पैरों पर गिरकर उसके क्रोध को शांत कर दिया। तब रावण को यह समझ आया कि उसकी प्यारी बहन राजा मधु के साथ सुखी है। वह उन दोनों को शांतिपूर्वक रहने के लिए छोड़कर चला गया। धीरे-धीरे रावण और मधु अच्छे मित्र बन गए।

त्रिकूट पर्वत पर स्थित रावण की किलानुमा नगरी बड़ी ही अद्भुत थी। इसका निर्माण देवताओं के शिल्पकार विश्वकर्मा द्वारा किया गया था। मधु को भी वैसी ही नगरी बनाने की इच्छा हुई होगी।

जैसे ही वह शानदार नगरी बनकर तैयार हुई, कवियों व गायकों ने अपने गीतों में उसकी भव्यता का खूब बखान किया। दूर-दूर से लोग इस नगरी को देखने आते थे। क्योंकि उस नगरी की स्थापना राजा मधु ने की थी, इसलिए इस नगरी का नाम 'मधुपुरी' पड़ा। धीरे-धीरे मधुपुरी का नाम छोटा होकर 'मथुरा' हो गया।

वर्ष बीतते गए और मथुरा में असुरों के शासन का अंत हो गया। अब मथुरा के सिंहासन पर राजा उग्रसेन बैठे थे। वे अत्यंत ही सदाचारी, सात्विक और न्यायप्रिय शासक थे। उनके राज्य में प्रजा बड़ी खुशहाल थी।

एक बार राजा उग्रसेन की रानी घाटी के किनारे वातावरण का आनंद लेते हुए अकेले ही टहल रही थी। एक असुर की आत्मा आकर शरीर/गर्भ के भीतर प्रवेश कर गई। कुछ समय बाद उसने पुत्र रूप में जन्म लिया, जिसका नाम 'कंस' रखा गया। कंस बहुत ही उद्दंड, अहंकारी व बड़ा ही क्रूर राजकुमार था। नियति को अभी और बुरा होना था। कंस का विवाह मगध के अत्याचारी राजा जरासंध की दोनों पुत्रियों से हुआ। महत्वाकांक्षी कंस जल्दी-से-जल्दी महाराज बनकर मथुरा के राजसिंहासन पर बैठना चाहता था। अपने ससुर की सहायता से उसने अपने माता-पिता को महल के एक सुनसान कोने में बंदी बनाकर रख दिया और स्वयं को मथुरा का महाराज घोषित कर दिया।

हाय! कंस के राज में उसके दुष्ट लोगों द्वारा प्रजा को हर जगह सताया जाता था। उस समय अन्याय, झूठ और क्रूरता सब ओर व्याप्त थी, जिसके पास ताकत होती थी, वही सही होता था। कंस ने खुद भी बुरे कर्मों को करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। संत व अच्छे लोग जिन्होंने कंस की भलाई के लिए उसे यह सब त्याग देने की सलाह दी, उसने उनकी बात कभी नहीं मानी, बल्कि उन्हें अपमानित किया। जो कोई उसका विरोध करने का साहस करता, वह उसे बहुत कष्ट देता और उनकी हत्या करवा देता। मृत्युदंड दे देता।

महाराज उग्रसेन और उनकी रानी निर्जन बंदीगृह में कंस के इस दुष्ट कर्मों पर आँसू बहा रहे थे। अच्छे व्यक्ति और श्रेष्ठ मंत्री भय के मारे अपना मुँह बंद रखते थे। केवल साधु संन्यासी ही कंस के दुराचारों का अंत करने का साहस कर सके। उन्होंने भगवान विष्णु की उपासना की तथा उन्हें स्वयं ही धरती पर आकर इन सबसे मुक्ति दिलाने की प्रार्थना की। एक समय वह भी आया जब उन्हें विश्वास हो गया कि भगवान उनकी प्रार्थना सुन रहे हैं।

एक बार घमंडी व प्रदर्शन पसंद राजा कंस बड़ा ही प्रसन्न था। उसकी छोटी बहन राजकुमारी 'देवकी' का विवाह यादवों के वंशज राजकुमार वसुदेव से हो रहा था। प्रतापी राजा 'यदु' के बाद ही उस वंश का नाम यादव पड़ा। अब वसुदेव का परिवार मथुरा में ही बस गया था। विवाह के बाद वर-वधू रत्न जड़ित व पुष्पों से सुसज्जित रथ पर सवार हुए और अपने घर की ओर प्रस्थान किया। उस शोभा यात्रा में सबसे आगे पुजारी थे। उनके पीछे दरबारी व राज्य के कुलीन जन थे, फिर दोनों परिवारों के सदस्य और उनके पीछे बाजगीर व गवैये थे। उसी प्रकार रथ के पीछे राज्य की प्रजा व पुनः बाजगीर व गवैयों का एक समूह था। रथ के दोनों बगल से दूल्हे के मित्र व दुल्हन की दासियाँ जा रही थीं। घरों की छत की मुंडेर से वर-वधू तथा शोभा यात्रा पर पुष्पों की वर्षा और सुगंधित इत्रों की फुहार की जा रही थी।

अचानक से कंस हँसते हुए आया और रथ पर बैठ गया, फिर सारथी के हाथ से घोड़ों की लगाम अपने हाथ में ले ली। कंस के इस आचरण से सचमुच उसकी बहन देवकी के प्रति उसका प्रेम व स्नेह दिखाई पड़ रहा था। पहली बार वहाँ पर उपस्थित सभी लोगों ने कंस की बहुत सराहना की। लोगों द्वारा इतनी जोर-जोर से अपनी प्रसंशा सुन कंस बहुत ही प्रफुल्लित हुआ। उसने लोगों के



अभिवादन का आभार प्रकट करते हुए लगाम को ऐसे खींचा कि घोड़े एक नई ताल के साथ आगे की ओर धीरे-धीरे दौड़ने लगे। लोगों ने आनंदपूर्वक ताली बजाकर कंस की सराहना की।

परंतु अचानक ही अशुभ और अकल्पित घटना घटी। आकाश से अचानक से बिजली चमकी और बादलों के बीच से एक भयंकर आकाशवाणी हुई। यह आकाशवाणी लोगों के शोर व तालियों की गड़गड़ाहट से बहुत अधिक तेज थी। आकाशवाणी से आवाज आई, "हे कंस! वह दिन दूर नहीं, जब तुम्हारी क्रूरता से लोगों को मुक्ति मिल जाएगी, तुम्हारी यह बहन जिसे तुम आनंदपूर्वक व सुरक्षित लेकर जा रहे हो, इसी की आठवीं संतान तुम्हारा वध करेगी व इस निर्दोष प्रजा के दुखों का अंत होगा।"

आकाशवाणी गूँज रही थी और उसकी अंत तक शोभा यात्रा थमी हुई थी। सभी लोग मुँह खोले हुए भौचक्के होकर ऊपर की ओर देख रहे थे, सारा आकाश काले बादलों से ऐसे ढक गया, जैसे कि वह भी इस भयंकर आकाशवाणी से उत्साहित हो।

इस सन्नाटे के खत्म होते ही कंस की भयंकर गर्जना सुनाई पड़ी। वह अत्यंत भयानक दिख रहा था। उसकी रक्तरंजित आँखों से अंगारे बरस रहे थे, परंतु वह कुछ नहीं कर सकता था।

उसके हाथों से लगाम ढीली पड़ गई। सभी लोग असहाय से डरे हुए खड़े थे, उसने बिजली की तेज गति से अपनी तलवार म्यान से निकाली और पीछे मुड़कर देवकी को बालों से पकड़कर खींच लिया।

"भैया, आप क्या कर रहे हैं?" देवकी भय से चीखने लगी, परंतु उसकी चीख कंस के दानवी अट्टहास में दब गई।

"आठवीं संतान? हा हा हा!" कंस गरजा व पागलों के समान हँसने लगा। "क्या मैं मूर्ख हूँ जो तुम्हारी पहली संतान के जन्म की भी प्रतीक्षा करूँगा? अभी यहीं मैं इस भविष्यवाणी को गलत सिद्ध कर दूँगा। जो मेरे काल को जन्म देने वाला है, मैं उसे ही समाप्त कर दूँगा। देवकी, मेरी बहन, मुझे क्षमा करना, परंतु अपने कालदूत को जन्म देने के लिए मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ सकता!"

कंस ने अपनी चमकती हुई तलवार निकाली, बिजली की चमक में वह तलवार कोई अशुभ रंग दिखा रही थी।

2

तानाशाह के कृत्य

“रुकिए, महाराज कंस! रुकिए!” डर के मारे सभी लोग चीखने लगे। कई स्त्री और पुरुष तो बिजली की चमक में कंस की चमचमाती हुई तलवार देखकर बेहोश ही हो गए।

बिजली इतनी तेज चमक रही थी और कड़कड़ाहट इतनी अधिक थी कि कान बहरे हो जाएँ, परंतु एक और आवाज भी थी जो इस आवाज से कहीं अधिक डरावनी व तेज थी।

यह कंस की आवाज थी। क्योंकि राजकुमार वसुदेव ने पलक झपकते ही दुष्ट कंस का दाहिना हाथ पकड़ लिया था ताकि कंस को देवकी पर तलवार चलाने से रोक सके और कंस वसुदेव को इसके भीषण परिणाम भुगतने की धमकी दे रहा था।

“क्या! मैं उस स्त्री को जीवित छोड़ दूँ जो मेरे हत्यारे की माँ बनेगी? क्या मैं इतना मूर्ख हूँ? क्या मुझे मारने वाले व्यक्ति को काली रूप में ही नोचकर नहीं फेंक देना चाहिए?” कंस ने भरे क्रोध में वसुदेव से ये प्रश्न किए और वसुदेव उसे रोकने के लिए अधिक जोर से उसकी कलाई पकड़े हुए थे।

“हे महाराज! आप अपने धर्म से आँखें कैसे मूँद सकते हैं? एक राजा होने के नाते क्या आपका यह कर्तव्य नहीं कि आप निर्दोष व असहाय लोगों की सुरक्षा करें? आप विपरीत कार्य कैसे कर सकते हैं?” इस प्रकार से एक वृद्ध सलाहकार ने कंस को समझाने का साहस किया।

“ऐ मूर्ख बुड्ढे! अपनी बकवास बंद कर! राजा हो या साधारण व्यक्ति, उसका पहला कर्तव्य है कि वह अपनी सुरक्षा का इंतजाम करे, खुद की रक्षा करे!” कंस ने जोर से चिल्ला कर उत्तर दिया।

"हे कंस! एक पल के लिए सोचिए, यह आप कौन-सा उदाहरण स्थापित करने जा रहे हैं! एक असहाय स्त्री की हत्या—उस पर आपकी बहन और उसके विवाह के कुछ घंटों के भीतर ही और हजारों लोगों की भीड़ के सामने-इसके बुरे परिणाम निश्चय ही आपको लंबे समय तक झेलने होंगे। आप कभी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं पाएँगे जिसके हृदय में आपके लिए प्रेम व सम्मान हो!" परिवार के एक बुजुर्ग व्यक्ति ने कहा। एक अन्य व्यक्ति ने कहा, "न केवल आपके अत्याचारों बल्कि आपकी कायरता के कारण इतिहास में आपका नाम कलंकित हो जाएगा। आपके इस कृत्य के बाद आपकी जो बुरी छवि बनेगी, कोई भी अच्छा व्यक्ति मरना भले ही पसंद करे, पर ऐसी छवि स्वीकार नहीं करेगा।"

"चुप रहो!" कंस चीखा। "ये बेकार के उपदेश देने बंद करो।" एक जोरदार झटका देकर उसने अपना हाथ वसुदेव की पकड़ से छुड़ा लिया और पुनः अपनी तलवार उठाई।

परंतु वसुदेव एकाएक उसके और देवकी के बीच में आ गए। "सुनो, मेरे मित्र इतने अधीर न बनो।" वसुदेव ने कंस से याचना की, "हमारी आठवीं संतान की संभावना अभी बहुत दूर है। मैं वचन देता हूँ कि मैं अपनी आठवीं संतान ही नहीं, बल्कि उसके पहले पैदा होने वाली सातों संतानें तुम्हारे हवाले कर दूँगा। तुम्हें उनके साथ जो करना हो, वो करना। देवकी को छोड़ दो और दिखा दो सबको कि तुम सचमुच एक समझदार, विवेकशील राजा हो। रही बात उस आकाशवाणी की तो हो सकता है कि वह एक धोखा हो, किसी उपद्रवी व मूर्ख आत्मा ने ऐसा किया हो, यदि बाद में कभी तुम्हें यह पता चला तो अपने गुस्से में आकर जल्दबाजी में जो काम तुम करने जा रहे हो, क्या उसे सुधार पाओगे?"

कंस रुक गया। बुजुर्गों की सच्ची प्रार्थनाओं और वसुदेव द्वारा दिए गए वचन से वह थोड़ा शांत हुआ। उसने उन सभी लोगों के उदास चेहरे को देखा, जो कुछ क्षण पहले उसकी प्रशंसा में फूले नहीं समा रहे थे। अब वह उन सभी चेहरों में भय एवं याचना देख रहा था।

उसने अपनी तलवार वापस म्यान में डाल दी। वसुदेव की ओर कठोरता से देखकर गरजा, "कहा जाता है कि जैसे ध्रुव तारा अपना स्थान कभी नहीं बदलता वैसे ही तुम भी अपने वचन से कभी नहीं बदलना। यहाँ पर उपस्थित हमारी सारी प्रजा तुम्हारे इस वचन की साक्षी है। जैसे ही तुम्हारी पत्नी को संतान होती है,



तुम उसे मुझे सौंप दोगे। मैं कोई भी खतरा नहीं उठाना चाहता, जैसे ही विवाह की सभी रस्में संपन्न होंगी, तुम दोनों मेरे कारागार में बंदी बनकर रहोगे और तब तक रहोगे, जब तक कि देवकी अपनी आठवीं संतान को जन्म न दे दे और मैं उसको समाप्त न कर दूँ।

कंस रथ से उतर गया और मुड़कर अपने महल में वापस चला गया। पीछे-पीछे उसके भरोसेमंद दरबारी और मंत्री भी चले गए।

बरात अपने गंतव्य की ओर चल पड़ी, परंतु सभी लोग उदास थे। न तो कोई बाजा ही बजाया जा रहा था और न ही किसी की कोई आवाज सुनाई दे रही थी। बस सुनाई दे रही थी तो देवकी और उसकी दासियों की सिसकियाँ, साथ में लोगों की आहें।

कंस ने जल्दी ही सिद्ध कर दिया कि उसने जो कहा था, वह मात्र धमकी नहीं थी। देवकी और वसुदेव एक छोटे से घर में बंदी बना दिए गए, जो कंस के महल से एकदम लगा हुआ था; साथ ही चारों ओर संतरी तैनात थे।

दिन बीतते गए, कंस के चेहरे पर बेचैनी साफ दिखाई देती थी। दिन-प्रतिदिन वह अधिक अशांत और परेशान होता जा रहा था। इस कारण वह पहले से अधिक दुष्ट हो गया था। चमचे, दरबारी और चालाक मंत्री उसको सदा भड़काते रहते। किसी पर यदि उसे गुस्सा आ जाए तो उसे बुरी तरह से दंडित करता। वह साधुओं, विद्वानों किसी का भी सम्मान नहीं करता। वह अत्यधिक घमंडी और सनकी हो गया था। अब तो वह डरा हुआ भी था और दुष्टों की भाँति शासन कर रहा था।

उस रात कंस ने पलक भी नहीं झपकाई थी, जिस रात दासियाँ देवकी के पास से आकर सूचना दे रही थीं कि उसकी पहली संतान किसी भी क्षण जन्म ले सकती है। वैसे उसको देवकी की पहली या आगे जन्म लेने वाली छह संतानों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं थी, परंतु वह जिस चिंता से घिरा था उससे उसे छुटकारा नहीं मिल रहा था।

मध्य रात्रि में, मुख्य संतरी कंस के पास भागता हुआ आया, फिर स्वामी से बोला, “मुझे अभी-अभी राजकुमारी देवकी के कक्ष से एक नवजात शिशु के रोने का स्वर सुनाई दिया।”

"जल्दी जाओ और देखो कि पहरेदार सतर्क रहें, मैं अभी वहाँ आता हूँ," कंस ने आदेश दिया।

परंतु देवकी और वसुदेव के घर जिसको कंस ने कारागार बना रखा था, वहाँ तक उसको जाना ही नहीं पड़ा। सत्यवादी वसुदेव ने अपने सुंदर नवजात पुत्र को गोद में उठाया और बिना रुके कंस को मिलने चल दिया। देवकी अपने दुख को हृदय में दबाए हुए बड़े भारी कदमों से उनके पीछे चल रही थी। पहरेदार उनके पीछे-पीछे चल रहे थे और देवकी की दासियाँ डरी हुई उन पहरेदारों के पीछे-पीछे चल रही थीं।

कंस और वसुदेव बीच रास्ते में बरामदे में ही मिल गए। मित्र, यह हमारी पहली संतान, ऐसा कहते हुए वसुदेव ने शिशु को कंस के आगे रख दिया। वचन के अनुसार, मैं इसे तुम्हारी दया पर छोड़ता हूँ।

मेरे भइया! अपने इस भाँजे को जीवनदान दे दो। यह बड़ा होकर तुम्हारी सेवा करेगा। तुम तो राजाओं के राजा हो, यह तुम्हारा क्या बिगाड़ सकता है? कंस के पैरों पर रोते हुए देवकी गिर पड़ी।

एक तरफ तो कंस को वसुदेव की ईमानदारी ने प्रभावित किया, वहीं दूसरी ओर देवकी की प्रार्थना ने उसे संतुष्ट किया। आखिरकार यह देवकी की आठवीं संतान तो थी नहीं, इसलिए कंस इस पर दया कर सकता था।

ठीक है, ले जाओ इसे! हाथ मिलाते हुए कंस बोला।

खुशी की आँसुओं की धारा देवकी की नैनों से छलक रही थी। आप महान हैं, भइया! वह बोली और पति-पत्नी अपने बच्चे को लेकर वापस कारागार की ओर लौट गए।...

"इतना सही और दयालु राजा कभी इस धरती पर नहीं हुआ होगा," एक दरबारी ने कहा।

"हमारे राजा के दयालु स्वभाव पर कवि को निश्चय ही एक महाकाव्य लिखना चाहिए," दूसरे ने कहा।

कंस घमंड से अकड़ गया। आज सुबह से ही अपने मित्रों और चाटुकारों के साथ था।

तभी एक अन्य दरबारी ने कहा, "स्वामी! माना कि आप अत्यंत दयालु और महान हैं, पर क्या अपनी इस अच्छाई के आगे आपको अपनी सुरक्षा भूल जाना

चाहिए? यह सत्य है कि आकाशवाणी ने देवकी की आठवीं संतान को ही आपका शत्रु कहा था, परंतु कौन जाने देवताओं ने आपके साथ कोई छल किया हो? हो सकता है कि वे देवकी की आखिरी संतान से गिनती शुरू करें। कहने का मतलब है कि शत्रु आकाशवाणी के कथन के पहले कभी भी आ सकता है! क्या यही बस पर्याप्त नहीं कि आपने देवकी के प्राण छोड़ दिए? आपका शुभचिंतक होने के नाते इस अत्यधिक उदारता के लिए आपको सावधान करना मेरा कर्तव्य है!"

कंस के स्वभाव की क्रूरता जो अभी कुछ समय के लिए दबी हुई थी, पुनः जागने लगी थी। उसकी आँखों में घृणा उतर आई। एक अक्षर कहे बिना उसने अपनी तलवार म्यान से निकाली और देवकी के कक्ष की ओर तेजी से चल पड़ा। इससे पहले कि राजकुमारी कुछ समझ पाती, उसने बच्चे को छीन लिया।

देवकी डर के मारे काँपने लगी और बेहोश होकर गिर पड़ी। वसुदेव तो जैसे एक ही मुद्रा में स्थिर हो यह सब देख रहे थे।

कंस बाहर आँगन में आ गया, जहाँ पत्थर की एक शिला पड़ी हुई थी। उसने उस नन्हे से शिशु को पैरों से पकड़ कर ऊपर उठा लिया और उसी पल हत्या करने के लिए नीचे शिला पर पटक दिया। किसी के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल पाया।



3

दिव्य बालक का जन्म

जो कंस ने किया था, उसे सुनकर मथुरावासी घबराए और आश्चर्यचकित थे। यह अत्यंत दुखद समय था। वे अपने भाग्य को धिक्कार रहे थे कि उन्हें ऐसे दुष्ट राजा के राज्य में रहना पड़ रहा था एवं उसके क्रूरतापूर्ण कार्यों को सहन करना पड़ रहा था।

मंत्रियों एवं दरबारियों में जो भी संवेदनशील अच्छे लोग थे, उनका सर लज्जा से झुक गया था।

परंतु कुछ ऐसे भी लोग थे, जिन्हें ऐसी विचित्र बातों में आनंद आता था और वे खुश होते थे।

कंस में उन्हें उनका नायक दिखाई देता था! अच्छे काम बहुत से लोगों को अच्छाई की प्रेरणा देते हैं, बुरे काम कुछ लोगों में बुराई को बढ़ावा देते हैं। और जब इस प्रकार के अच्छे और बुरे कर्म कोई राजा या नेता करता है तो उसका प्रभाव सदा ही बहुत दूर तक फैलता है। जिस प्रकार यदि वातावरण में गुनगुनी धूप हो, शीतल पवन चले, चारों ओर पुष्पों की सुगंध फैली हो तो यह सब न देख पाने के बाद भी हम भीतर से आनंद का अनुभव करते हैं। परंतु यदि वातावरण चिपचिपा और दुर्गंध युक्त हो तो कोई भी व्यक्ति उदास हो जाता है। उसी प्रकार से यदि वातावरण में सद्भावना, दया, विश्वास हो, लोगों में सद्गुण हों तो समृद्धि होती है। जब क्रूरता और अमानवीयता इतनी शक्तिशाली हो जाती है कि इनका मुकाबला नहीं किया जा सकता, तब दुष्टों को लगने लगता है कि वे कुछ भी बुरा कर सकते हैं और इसका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला।

कंस द्वारा देवकी के नन्हे शिशु की हत्या ने न केवल मथुरा के वातावरण को दूषित किया, बल्कि पड़ोसी राज्यों पर भी असर डाला। दूसरे राजा कंस से

बहुत प्रभावित हुए, उन्हें लगा कठोर से कठोर होना व दुष्ट होना ही एक महान राजा की पहचान है।

जो भी हो, कंस की मृत्यु की भविष्यवाणी से एक अच्छा नतीजा यह निकला कि वह हर समय अपने भाग्य को सोच-सोच कर डरा हुआ रहता था। एक अजन्मे रहस्यमय शिशु के भय ने उसकी हिम्मत तोड़ दी थी और वह अपनी निर्दोष प्रजा पर अत्याचार एवं साधुओं का अपमान करने से डरने लगा था।

देवकी और वसुदेव कारागार में ही रह रहे थे। वसुदेव को थोड़ा-बहुत घूमने फिरने की स्वतंत्रता थी, परंतु देवकी को बिल्कुल भी नहीं थी। कंस ने अपनी क्रूरता जारी रखी। साल-दर-साल, एक के बाद एक कंस उनके बच्चे की हत्या करता रहा। यह अशुभ कार्य एक तरह की रस्म बन चुका था। कंस देवकी की गोद से बच्चे को छीन लेता, तुरंत आँगन में आता, बच्चे को पैरों से पकड़ कर, बहुत ऊँचा उठाकर नीचे पत्थर की शिला पर पटक देता। यह दृश्य इतना भयावह होता कि बहुत से बंदी इसे न देखने के लिए उस स्थान से दूर चले जाते। परंतु फिर भी कंस के पास अपने प्रशंसकों व चाटुकारों की कमी नहीं थी, जो उसका उत्साह बढ़ाते रहते।

देवकी अब अपनी सातवीं संतान को जन्म देने वाली थी। पति-पत्नी को स्वप्न द्वारा पता चला कि यह कोई महान आत्मा जन्म लेने वाली है। देवकी सदा की तरह अपने इस शिशु को भी कंस के क्रोध से बचाने के लिए चिंता में थी। परंतु कौन ऐसा था जो उसके इस कार्य में सहायता करता? उसकी मार्मिक प्रार्थनाएँ ऊपर देवी माँ तक पहुँची।

वसुदेव ने देवकी से इसलिए विवाह किया था कि क्योंकि उनकी पहली पत्नी (रोहिणी) निःसंतान थी। रोहिणी भी दिन-रात देवी माँ से प्रार्थना करती। रोहिणी की संतान प्राप्ति के लिए प्रार्थना और देवकी की संतान की सुरक्षा के लिए प्रार्थना जैसे एक ही समय पर स्वीकार कर ली गई हों। देवी महामाया ने चमत्कार दिखाया— प्रकाशपुंज के रूप में उनका एक स्वरूप नीचे आया और उसने देवकी के गर्भ से उस शिशु को रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया— बाद में यह बालक बलराम के नाम से जाना गया— जिसका-पालन पोषण नंद के घर में सुरक्षित रूप से हो रहा था। नंद यमुना के पार गोपा गाँव में रहते थे। वे ग्वाल जाति के मुखिया और वसुदेव के प्रिय मित्र थे।

देवकी की देखभाल करने वाली दासियों ने कंस को सूचना दी कि देवकी का यह शिशु गर्भ में ही मर गया है। कंस ने पूछताछ करवाई और सूचना को सही पाया।

एक वर्ष या उसके बाद दासियों ने कंस को देवकी के पुनः गर्भवती होने की सूचना दी। इस सूचना ने उसे डरा दिया, क्योंकि अब देवकी की आठवीं संतान और कंस का काल पैदा होने वाला था।

उसी समय एक तसल्ली भी थी अब इस शिशु को समाप्त कर देने के बाद वह सारी चिंताओं से मुक्त हो जाएगा।

जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे उसका तनाव बढ़ता जा रहा था। दासियाँ प्रतिदिन की सूचना आकर दे रही थीं। जैसे ही सूचना मिली कि शिशु का जन्म एक-दो दिनों के भीतर कभी भी हो सकता है, कंस आतंक से भर गया, बुरी तरह भय से काँपने लगा। वह देवकी के कक्ष के बाहर बरामदे में बार-बार आता, ताकि बच्चे के रोने की आवाज सुन सके। उसने पुराने तैनात सभी पहरेदारों को हटा दिया और दैत्यों को पहरेदारों की तरह तैनात कर दिया— जिन पर अधिक भरोसा करता था। वसुदेव और देवकी पर से दैत्यों की निगरानी क्षण भर के लिए भी नहीं हटती थी।

उस दिन भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी थी। संध्या का समय था, कंस बरामदे में इधर-से-उधर घूम रहा था कि तभी एक दासी ने आकर उसे सूचना दी, "स्वामी, राजकुमारी आज रात्रि में ही शिशु को जन्म दे सकती हैं।"

"अच्छा! ऐसी बात?" पूछते हुए कंस ने दासी को ऊपर से नीचे तक देखा। एकाएक देवकी की सेवा में लगी सभी दासियों के प्रति उसे शंका होने लगी, "कौन जाने इनमें किसी को देवकी ने अपनी ओर मिला लिया हो?"

"कोई भी दासी आज की रात देवकी की सेवा में नहीं रहेगी!" कंस ने आदेश दिया। उसने चुपके से देवकी के कक्ष में यह निश्चित करने के लिए झाँका कि वहाँ वसुदेव के अलावा कोई भी न हो। उसने दैत्य प्रहरियों को आदेश दिया कि जैसे ही वे बच्चे के रोने का स्वर सुनें, तुरंत उसके शयन कक्ष में आकर उसे जगा दें। उस दिन मथुरा में वह भयानक काली रात थी। पर्वतों के समान तैरते हुए दैत्याकार बादल पूरे आसमान को ढके हुए थे। एक छोटे-से तारे का प्रकाश भी धरती पर नहीं आ रहा था। हजारों सियारों की हूक और सीटियों की चीख के जैसी शोर करती हुई तेज आँधी कंस के महल में प्रवेश कर गई।

देवकी एवं वसुदेव अपने कक्ष में अत्यधिक कष्ट में थे। दीए की टिमटिमाहट में दिखाई दे रहा था कि असहनीय पीड़ा से देवकी का चेहरा पीला पड़ रहा था। वसुदेव उसके बिछौने के चारों ओर असहाय एवं दुखी होकर इधर-से-उधर घूम रहे थे।

"यदि विधाता अपनी इच्छापूर्ण करने का दायित्व मेरी संतान को सौंपना चाहते हैं, तो कठिन परिस्थिति से माँ भगवती को ही पार लगाना होगा। उन्हें हमारी रक्षा के लिए आना ही होगा," हाथ जोड़कर हृदय से प्रार्थना करते हुए देवकी ने कहा।

इतने में जोरदार आँधी चली और सारे दीए बुझ गए। वह रात का सबसे अंधकार भरा प्रहर था। वसुदेव आँख मूँद कर प्रार्थना करने लगे। अगले ही क्षण उन्हें आभास हुआ कि जैसे तेज परंतु शीतल ज्वाला से सारे कक्ष में उजाला हो गया है। उन्होंने आँखें खोली तो पाया कि यह सच है, एक सुनहरे नीले रंग के प्रकाश ने कक्ष के सारे अंधकार को समाप्त कर दिया है।

जल्दी ही एक भव्य-सी आकृति उस आभा में उभरी।

वसुदेव को उसमें देवी महामाया की झलक दिखाई पड़ी।

"अपना पुत्र उठाओ!" देवी ने कहा।

"पुत्र!" वसुदेव ने अचंभे से पीछे देखा। देवकी अपनी शय्या पर लगभग बेहोश-सी लेटी थी और उसके पास लेटा हुआ था उसका आठवाँ पुत्र— वह इतना सुंदर था, उसमें इतना चुंबकीय आकर्षण था कि उसका बखान कर पाना असंभव था। "इसे तुरंत नंद के घर ले जाओ। उसकी पत्नी यशोदा ने अभी-अभी एक पुत्री को जन्म दिया है। अपने पुत्र को वहाँ रखकर उसकी पुत्री को लेकर वापस आ जाओ," देवी ने कहा। वासुदेव ने उस शिशु को उठाया और अपनी काँपती हुई बाहों में थाम लिया। वसुदेव परमानंद में थे। उस बालक का मुख इतना प्यारा था कि कोई चित्रकार उससे सुंदर चित्र कभी नहीं बना पाता। वसुदेव मोहित होकर बस उस बालक को देखे जा रहे थे।

"परंतु, माँ..." उन्होंने कंस के कारागार से बाहर निकल पाने में आशंका जताई।

"चिंता मत करो, सारे पहरेदार, महल के सारे निवासी, सारे बंदी और यहाँ तक की मथुरा की सारी प्रजा, सभी अचेत होकर निद्रा में डूबे हुए हैं। मेरे चमत्कार से यह सब हुआ। तुम निडर होकर आगे बढ़ो!" देवी महामाया ने कहा।

शिशु को छाती से लगाकर वसुदेव ने झुककर देवी महामाया को प्रणाम किया और द्वारों की ओर देखा जिनमें ताले बंद थे।

एकाएक सारे द्वार खुलकर हवा में लहराने लगे।



4

गुप्त बदलाव

वसुदेव कक्ष के बाहर निकलने ही वाले थे कि देवकी ने पुकार लिया, ““स्वामी रुकिए! मुझे मेरे पुत्र की एक झलक और देख लेने दीजिए!”

वह वसुदेव के पास आई। देवी महामाया का मोहक प्रकाश जो अभी कुछ क्षण पहले चमक रहा था, वह अब अदृश्य हो चुका था। परंतु जैसे ही दोनों ने अपने पुत्र को ध्यान से देखा, अचानक ही वह बालक एक तारे की तरह जगमगाने लगा। उसे देखते ही वे दोनों सुख आनंद से भर गए– उन्होंने उस अद्भुत बालक में स्वयं भगवान विष्णु की छवि देखी। उसके चार छोटे-छोटे हाथ थे, जिनमें वह भगवान के प्रतीकों– शंख, चक्र, गदा व पद्म को धारण किए हुए था।

वह सचमुच में एक झलक ही थी, जो पलक झपकते ही अदृश्य हो गई। बालक पुनः अपने उसी सुंदर मानवीय रूप में आ गया था।

“अब हम जान गए कि हमारा पुत्र कौन है। अपने भक्तों की प्रार्थनाओं को सुनकर स्वयं भगवान विष्णु अवतरित हुए हैं!”

वसुदेव ने अपनी बात को सही बताते हुए कहा।

“मेरा कितना मन था कि भगवान के उस दिव्य स्वरूप का दर्शन कुछ देर तक और कर पाती!” देवकी ने कहा।

“भगवान धरती पर मानव रूप में इसलिए आते हैं ताकि वे साधारण मनुष्यों के साथ रह सकें और उन्हें अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन कराते हैं जिससे लोग उनके कार्य में सहभागी होने का सुख प्राप्त कर सकें। वे स्वयं को भूलकर धरती पर सबके साथ रहने का आनंद उठाते हैं। साथ ही, अपने उद्देश्य को ध्यान में रखते हैं जिसके लिए वे धरती पर आते हैं।” वसुदेव ने समझाया।

"मुझे यह सब कुछ समझ नहीं आता। बस मैं इतना जानती हूँ कि मेरा पुत्र अन्य बालकों से अलग नहीं दिखाई देना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो कंस उसे ढूँढ़ निकालेगा।" देवकी ने कहा।

वसुदेव बोले, "तुम सत्य कह रही हो, परंतु अभी समय नष्ट नहीं करना है। मुझे जल्दी ही अपने मित्र के घर पहुँचना चाहिए।"

देवकी ने अपने पुत्र को स्नेह से चूमा और बड़े ही भारी मन से उसके नन्हे हाथों को छोड़ दिया। अपने पुत्र को छाती से लगाकर वसुदेव कारागार से बाहर निकल गए।

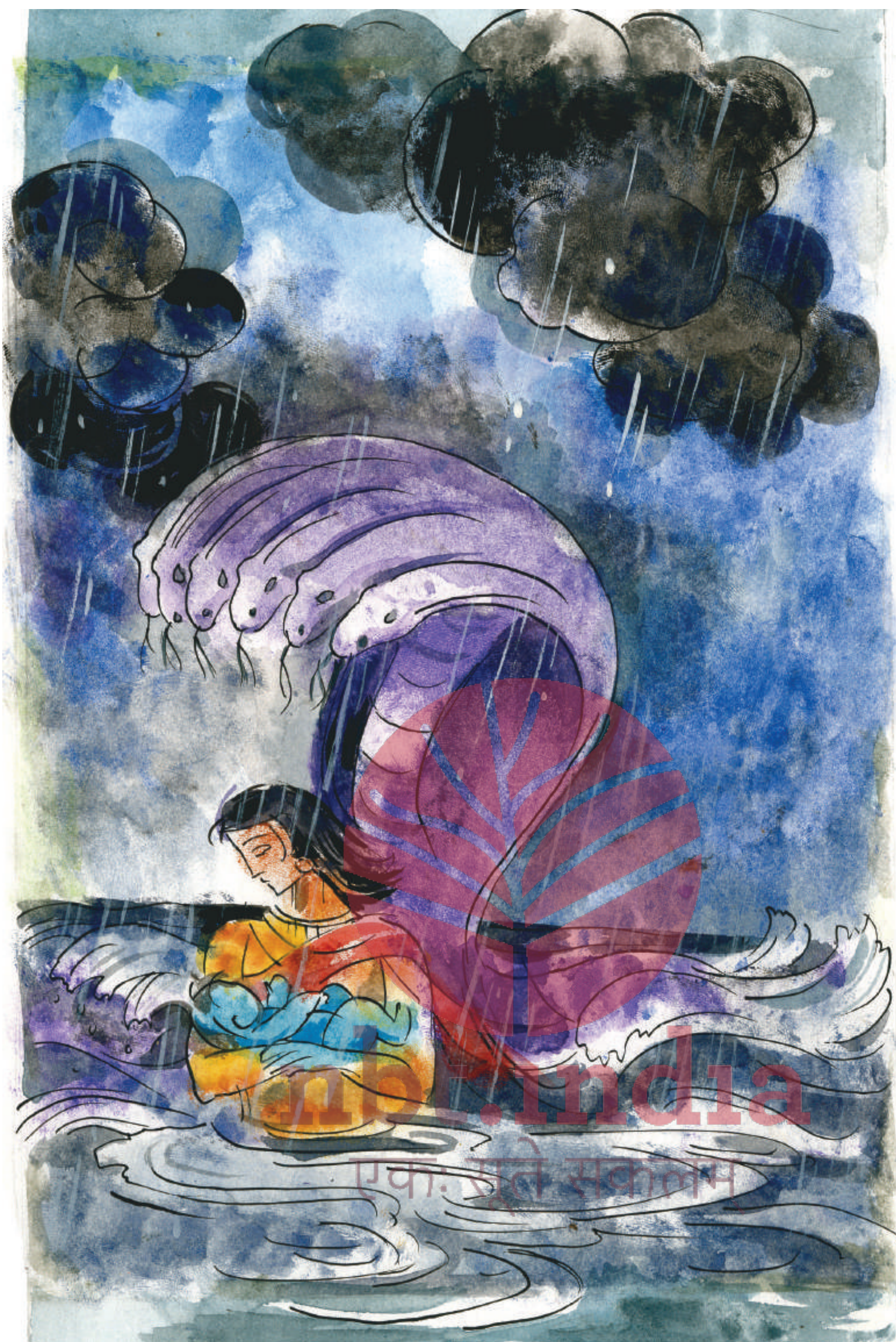
एक जोर की आँधी महल के भीतर चलने लगी जिसने सारे दिए व मशालों को बुझा दिया। दैत्य पहरेदार इधर-उधर बेसुध पड़े थे। इतनी भीषण वर्षा जैसे कोई कोड़े मार रहा हो और हवा का इतना तेज प्रवाह कानों में सनसनाहट पैदा कर रहा था, पहरेदार भय के मारे जोर-जोर से चिल्लाने लगे। परंतु सब कुछ करने के बाद भी वसुदेव उनके बगल से निकल गए और वे उन पर ध्यान भी नहीं दे पाए, एक-एक करके महल के सभी द्वार अपने-आप ही वसुदेव के लिए खुलते जा रहे थे।

महल के बाहर घोर अंधकार था। आसमान में विशालकाय बादल एक-दूसरे से ऐसे टकरा रहे थे मानो बहुत बड़ी-बड़ी धारदार कैंचियाँ अंधकार को टुकड़ों में काट रही हों और उनके दोनों धारों के मिलने से ही तेज बिजली चमक रही हो। बादलों की भीषण गड़गड़ाहट से तो जैसे पूरी धरती ही काँप रही हो।

वसुदेव को हर ओर घुप्प अंधकार के अलावा और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था, परंतु उस अंधकार में भी बालक का मुख नीले हरे आभामंडल से जगमगा रहा था। उन्हें पता ही नहीं चला कि वे कब यमुना नदी में प्रवेश कर उसके बहाव को बड़ी मेहनत से काटते हुए पार कर रहे थे।

नदी अत्यधिक उफान पर थी और बहाव बड़ा ही तीव्र था। वसुदेव धारा के तीव्र प्रवाह में भी बिना डगमगाए चलते जा रहे थे। परंतु जब पानी उनके कंधे तक पहुँच गया और ऊँची-ऊँची लहरों के थपेड़े बालक तक पहुँचने लगे, तब उन्हें रुकना पड़ा।

एकाएक, वसुदेव को आभास हुए कि वर्षा तो मूसलाधार हो रही थी, परंतु वे अचंभित थे कि उन पर या शिशु पर बौछार भी नहीं पड़ रही थी। अगले ही क्षण,



जैसे ही उन्होंने ऊपर देखा, आनंद और आभार से उनका हृदय गद्‌गद हो गया। उन्होंने देखा कि सर्पों के सम्राट 'वासुकी' उस दिव्य बालक की वर्षा से सुरक्षा के लिए, अपने अनगिनत फनों को छाते की तरह फैलाए पीछे-पीछे चल रहे थे।

"यदि विधाता की इच्छा के विरुद्ध वर्षा तक मेरे पुत्र को नहीं छू पा रही है तो यह नदी क्या कर पाएगी?" ऐसा सोचते हुए वसुदेव उफनाती लहरों को चीरते हुए आगे बढ़ गए।

निश्चय ही, पावन नदी भी किसी तरह की हानि बालक को नहीं पहुँचाना चाहती थी। वह तो बस जैसे उनके चरणों का स्पर्श और उन्हें सहलाना चाहती थी।

वसुदेव बिना किसी कठिनाई के नदी को ऐसे पार कर गए, जैसे किसी घास के मैदान पर चल रहे हों। 'वासुकी' वापस लौट गए थे। वर्षा भी धीमी हो चुकी थी। गोपा गाँव और गाँव के मुखिया नंद का घर अब दूर नहीं था। नंद वसुदेव के मित्र होने के साथ-साथ सौतेले भाई भी थे। ग्रामवासी अपने मुखिया नंद को अपना राजा मानते थे और यशोदा को अपनी रानी जैसा सम्मान देते थे। वसुदेव गाँव पहुँच गए, परंतु अब उन्हें थोड़ी चिंता यह भी थी कि यदि नंद के द्वारपालों ने उन्हें रोककर पूछताछ की— वे कौन हैं, इतनी रात में असमय एक बच्चे को गोद में लिए क्यों घूम रहे हैं, तो वे क्या उत्तर देंगे?

परंतु यहाँ एक और आश्चर्य उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उन्हें तुरंत आभास हुआ कि माता महामाया की महिमा से न केवल मथुरावासी ही अचेत पड़े थे, बल्कि गोपावासी भी उसी निद्रा में डूबे थे।

सब ओर सन्नाटा था। चंद्रमा का मंद प्रकाश बादलों के बीच में से धरती पर पड़ रहा था और धीमे प्रकाश में नंद का भवन एक भूतिया भवन के जैसा प्रतीत हो रहा था।

वसुदेव ने भवन में प्रवेश किया और बिना रुके यशोदा के शयन कक्ष में चले गए।

रानी यशोदा के पलंग के सिरहाने पर रत्न जड़ित दो खंभे सजे हुए थे और उनमें लगे दर्जनों दिए उस पलंग की शोभा और बढ़ा रहे थे। पलंग के चारों ओर धरती पर दासियाँ सो रही थीं।

देवी यशोदा भी चैन से सोई हुई थी।

यदि कोई जाग रहा था तो यशोदा की नवजात कन्या। वो अपने नन्हे-नन्हे हाथ पैर को हिलाते हुए खेल रही थी। उसके मनमोहक नेत्र ऐसे चमक रहे थे जैसे कि वे अपने इस विशेष आगंतुक की प्रतीक्षा में थी।

जोर की हवा चल रही थी और दीयों की ज्योति हवा की लय में काँप रही थी। वसुदेव अपनी सुधबुध खोए सम्मोहित से खड़े थे। कभी वे अपनी गोद में खेल रहे बालक को देखते तो कभी यशोदा की शय्या पर खेलती बालिका को। अचानक ही बादलों की गड़गड़ाहट से उनका ध्यान टूट गया और उन्हें याद आया कि वे किस कार्य हेतु आए थे।

बहुत ही धीरे से, उन्होंने अपने पुत्र को देवी यशोदा के बगल में लिटा दिया और बड़ी सावधानी से उनकी पुत्री को अपनी गोद में उठा लिया। यशोदा को नींद में डूबा हुआ देख उन्होंने मन-ही-मन कहा, "बहन मैं अपने पुत्र को तुम्हारे स्नेह और सुरक्षा में छोड़े जा रहा हूँ, परंतु तुम्हारी पुत्री के भाग्य में क्या है, मैं नहीं कह सकता। मुझे क्षमा करना, मैं बस माँ भगवती के आदेश का पालन कर रहा हूँ।"

अपने पुत्र की एक अंतिम झलक देखकर और नंद के शिशु को अपनी छाती से लगाकर वसुदेव तुरंत घर से बाहर निकल गए।

सुबह हो चुकी थी और साथ ही देवकी के कक्ष से बच्चे के रोने के स्वर भी सुनाई देने लगा था। महल के सारे प्रहरी और निवासी अब जाग चुके थे, परंतु वे रात्रि के ऐतिहासिक घटनाक्रम से अनभिज्ञ थे।

कंस के कक्ष में पहुँचने के लिए पहरेदारों की होड़ लग गई।

"महाराज! राजकुमारी देवकी ने अपनी आठवीं संतान को जन्म दे दिया है!" सभी ने बड़े उत्साह से कंस को सूचित किया।

कंस उछल पड़ा। वह एक शब्द भी नहीं बोला, परंतु उसके भभकते नेत्रों से मानो भयानक ज्वाला निकल रही थी। दाँत पीसते हुए वह देवकी के कक्ष की ओर भागा।

"भइया!" जोर-जोर से रोते हुए देवकी कंस के पैरों पर गिर पड़ी। "यह एक लड़की है। यह तुम्हें क्या हानि पहुँचा सकती है? तुम्हारे क्रोध ने सब कुछ नष्ट कर दिया— मेरी सभी अबोध संतानों को खा गया तुम्हारा क्रोध। क्या तुम एकमात्र इसको नहीं छोड़ सकते— बस यह एक बच्ची ही तो है, जिसके सहारे मैं जी पाऊँगी, जो मेरे जीवन का आधार होगी?"

वसुदेव, डबडबाती हुए आँखों से बोले, "प्रिय कंस! मैं वचन देता हूँ, हम इस बच्ची को लेकर यहाँ से कहीं दूर जंगलों में चले जाएँगे। यदि फिर भी तुम्हारा मन न भरे तो तुम इसका विवाह अपनी पसंद के व्यक्ति से करा देना ताकि यह सदा के लिए तुम्हारे अनुसार ही रहे। एक अबोध कन्या की हत्या का पाप क्यों करते हो!"

कंस ने उपहास किया। "वसुदेव! तुम्हारे सात शिशुओं की हत्या करके क्या मैंने कोई पाप नहीं किया? यदि एक और हत्या कर दूँगा तो क्या अंतर पड़ेगा? यदि मुझे तुम्हारी आठवीं संतान को छोड़ देना होता, जो कि उस अशुभ भविष्यवाणी के अनुसार जो मेरा सबसे बड़ा शत्रु है, क्या मैं मूर्ख था कि तुम्हारी सभी संतानों की हत्या कर दी?"

कंस का निर्दयी अट्टहास सुनकर वसुदेव यह समझ चुके थे कि अब किसी भी प्रकार की याचना व्यर्थ होगी। वे चुप हो गए, परंतु देवकी अभी भी उस दुष्ट के पैरों से लिपटी हुई थी।

"छोड़ो मुझे!" कंस ने जोर से चीखते हुए देवकी को पैरों से झटक दिया।

वसुदेव मूर्ति के समान खड़े देखते रहे। और देवकी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। कंस तेजी से बाहर निकला। पलक झपकते ही वह आँगन में उसी स्थान पर पहुँच गया, जहाँ वह भयानक शिला रखी हुई थी। चूँकि भविष्यवाणी के मुताबिक अब यह देवकी की आठवीं संतान थी, अतः इसको मारने में अधिक उत्सुक था और कोई भी भूल नहीं करना चाहता था। उसने बच्चे को ऊपर उठाकर घुमाना शुरू किया, ताकि अधिकतम जोर से व सही बल लगाकर नीचे गिराकर मार सके।

परंतु, देखो यह क्या हुआ! अभी तो उसने आधा चक्कर ही घुमाया था कि बच्ची उसके हाथ छूट गई और छूटते ही सुबह के स्वच्छ चमकीले नीले आसमान में चली गई। जैसे ही कंस ने ऊपर देखा वह भौचक्का रह गया। उसने देखा कि प्रकाश की एक चमकदार और सुनहरी रेखा नीले आसमान में विलीन हो रही है। यह देखते ही वह चकित रह गया।

परंतु उसके पहले ही आसमान से एक स्वर गूँजा, जिसने न केवल पूरे महल को हिला दिया, बल्कि कंस को भी भीतर तक कँपा दिया। "अरे दुष्ट पापी, जान ले! तेरा काल जन्म ले चुका है। वह सुरक्षित और सकुशल तेरी जानकारी के बाहर वहाँ पल रहा है जहाँ भाग्य ने निर्धारित किया है!" आकाशवाणी ने घोषणा की।



कंस बहुत देर तक सन्न खड़ा रहा। अचानक से घटित यह घटना उसकी समझ से परे थी। वह बच्ची जो अब अदृश्य हो चुकी थी, स्वयं देवी महामाया थी– उन्होंने कंस को ऐसे असहाय करके छोड़ा था, जैसे अचानक से किसी व्यक्ति की दोनों भुजाएँ काट दी गई हों!

बस वह टकटकी लगाए आसमान की ओर देखता रहा।



5

नरभक्षी का खतरनाक इरादा

भयावह रात्रि का सन्नाटा प्रतिपल बढ़ता ही जा रहा था, जो कंस के महल में भी पसरा हुआ था। दुष्ट कंस मूर्ख-सा बना, चकित अपने आँगन में खड़ा सूने नेत्रों से बादलों में टकटकी लगाए हुए था, जैसे कि उसे अभी भी वही भयानक गूँज सुनाई दे रही रही हो।

परंतु अब बादल छँट रहे थे और मथुरा में एक नई सुबह उदित होने वाली थी। महल के चारों ओर बागों और फलों के उद्यानों में चिड़ियों का चहचहाना और गुंजन शुरू हो गया था।

सूर्य की मधुर-सी किरण सीधी आकर उसी पत्थर की शिला पर पड़ी, जिस पर एक के बाद एक देवकी के बच्चों की हत्या की गई थी।

अचानक कंस को वह शिला घृणित-सी दिखने लगी। यह उसके घिनौने अपराधों की मनहूस यादगार थी। उसने स्वयं से पूछा कि इन हत्याओं का क्या अर्थ निकला? यदि उसके पापों का सारा लेखा-जोखा देवताओं के पास है, जिसके कारण उन्होंने क्रोधित होकर उसके काल की घोषणा कर दी है, तो वह उस काल से बचने के प्रयास में अपने पापों को बढ़ा ही तो रहा था! तभी एक गुप्तचर ने आकर उसे सूचना दी कि कुछ संन्यासी कह रहे हैं— जिन शिशुओं की उसने हत्या की, वे भगवान विष्णु के भक्त थे और कंस के पापों का घड़ा भरने के लिए ही उनका जन्म हुआ था!

कुछ लोगों का तो कहना था कि यदि कंस की मति अपने काल के भय के कब्जे में नहीं आती, तो निश्चय ही वह असंख्य निर्दोष लोगों की हत्या करता, अपनी प्रजा पर अत्याचार करता, पड़ोसी राज्यों का विनाश करता। क्या लोगों द्वारा उस पर लगाया गया यह कलंक सत्य है? वह अचरजपूर्वक विचार करने लगा।

दिन चढ़ रहा था, धूप बढ़ रही थी परंतु उसे हर ओर अंधकार ही दिख रहा था। देवकी का दुख से भरा चेहरा उसे भयभीत कर रहा था। बहुत थके हुए कदमों से वह देवकी के कक्ष तक गया। वह अभी भी बेसुध पड़ी हुई थी। वसुदेव उसके बगल में धरती पर बैठे उसके मुख पर पानी छिड़क रहे थे।

"अब तुम्हें हमसे क्या चाहिए, कंस? एक बार तुम देवकी की हत्या करने को तत्पर थे और मैंने तुम्हें रोक दिया था। परंतु अब हमें यह जीवन जीने की कोई लालसा नहीं। अब तुम हमें मारकर सभी कष्टों से मुक्त क्यों नहीं कर देते?" वसुदेव ने बड़ी ही कठोरता से कहा।

"मेरे भाई, मैं तुम्हें इस बंदी गृह से मुक्ति दिलाने आया हूँ। सचमुच, मैंने तुम्हारे साथ बड़ी निर्दयता की। इसके लिए मैं बहुत लज्जित और क्षमाप्रार्थी हूँ। यह सब कुछ देवताओं की चाल है। परंतु अब मैं देखता हूँ कि कैसे वे मुझे इन निरर्थक कृत्यों के लिए बहकाते और भ्रमित करते हैं!"

कंस ने वसुदेव और देवकी से ढेर सारी तरह-तरह की बातें करके क्षमायाचना की और उनके घर जाने का प्रबंध किया। इसके बाद उसने अपने मंत्रियों को अत्यावश्यक बैठक के लिए तुरंत बुलावा भेजा।

अभी-अभी हुए सारे घटनाक्रम को वे मंत्री पहले से ही सुन चुके थे। उनमें से एक ने कहा "स्वामी, यदि देवता आपको भाँति-भाँति प्रकार से तंग कर रहे हैं तो इसका अर्थ यह है कि वे आपका सामना करने से डर रहे हैं। अब ऐसे कायरों से हमें घबराने की क्या आवश्यकता है?"

"मैं भूल नहीं सकता कि कैसे एक बार देवता आपसे डर कर भागे थे, जब आपने उन पर आक्रमण किया था, जैसे किसी सिंह के आगे से हिरण डर कर भागे," अन्य मंत्री ने ऐसा कहा।

दूसरे मंत्री भी देवताओं का इसी प्रकार उपहास करते हुए पशुओं की भाँति अट्टहास करने लगे। कंस, जो अभी कुछ समय पहले तक पश्चाताप में डूबा हुआ था, पुनः अपनी प्रशंसा से प्रसन्न हो गया।

परंतु उनमें से एक वृद्ध मंत्री अभी गंभीर थे। जब सभी का हास-परिहास बंद हुआ तो वे बोले, "निश्चय ही हमारे महाराज के समान अन्य कोई नहीं है। देवता भी इनकी बराबरी नहीं कर सकते। परंतु मैंने भी उन ऋषि-मुनियों को कहते हुए सुना है कि स्वयं भगवान विष्णु शक्तिशाली और अत्याचारी राजाओं का दमन

करने धरती पर आ रहे हैं। इस बात से मैं बड़ा चिंतित हूँ। वे सर्वाधिक बलशाली हैं। यदि उन्होंने किसी लक्ष्य प्राप्ति का निर्णय कर लिया है तो हमारे द्वारा खड़ी की गई हर बाधा ऐसी प्रतीत होगी, जैसे जल की आती हुई भयंकर लहरों को मुट्ठी भर-भर रेत डाल कर रोका जाए।"

वृद्ध मंत्री ने सभी के आनंद में विघ्न डाल दिया था। एक क्षण के लिए सभी लोग आशंकित हो, शांत हो गए थे। अचानक कंस अपनी ताल ठोंकते हुए गरजा—"परंतु मैं स्वयं को विष्णु की दया पर नहीं छोड़ सकता! मैं उसकी योजनाओं को असफल करने का हर प्रयास करूँगा। क्या इसके लिए तुम सब कोई बढ़िया उपाय सुझा सकते हो?"

"मेरे पास एक बड़ा कारगर उपाय है। आपके शत्रु का जन्म हाल ही में हुआ है— भले ही हम यह नहीं जानते कि वह कहाँ है। ठीक?" दैत्य सलाहकार ने पूछा।

"ठीक," कंस ने उत्तर दिया।

"क्यों न हम अपने राज्य के एक वर्ष से कम आयु के सभी शिशुओं की हत्या करवा दें?" मंत्री ने सलाह देते हुए कंस से पूछा।

"कितना अद्भुत उपाय है!" कंस खुशी से उछल पड़ा। वहाँ उपस्थित अन्य सभी भी आनंदित हो उठे। कंस ने तुरंत अपने गले से एक अनमोल हार निकाला और उस सलाहकार को पुरस्कार में दे दिया।

बिना समय गँवाए कंस ने गुप्त कक्ष में सर्वाधिक चालाक, क्रूर, भयानक, दैत्यों व राक्षसियों को बुलावा भेजा।

"तुम सभी को मेरे राज्य में और मेरे पड़ोसी राज्यों में इस एक वर्ष के भीतर पैदा होने वाले सभी नवजात शिशुओं की हत्या करना है। यह सब कैसे करना है यह सोचना तुम्हारा काम है!"

सभी दैत्यों और राक्षसियों ने एक-दूसरे की ओर देखा, उनके नेत्रों से अंगारे भभक रहे थे। कुछ तो बड़ी ही मुश्किल से अपनी प्रसन्नता दबा पा रहे थे, साथ ही बड़ी अधीरता से अपने हाथों को मसल रहे थे और बड़े अजीब से धूर्त प्रकार के शब्द निकाल रहे थे।

"महाराज, आपने हमें बिल्कुल हमारे मन का काम दिया है!" बड़े और अनुभवी दैत्य ने कहा।

“हे महाराजाधिराज! कितना समय बीत गया, हमने इस प्रकार का कोई भी उत्साहपूर्ण कार्य नहीं किया है!” छोटे दैत्य ने खिलखिलाते हुए कहा।

“जबसे आपने देवकी के शिशुओं की हत्या शुरू की, हमारा बड़ा मन था बच्चों की हत्या का, यह सबसे बढ़िया और मनोरंजक खेल खेलने का, हम तो इसमें हाथ आजमाने के लिए तरस रहे थे!” एक बड़े से दैत्य ने खुलकर कहा।

“मैं रात्रि में सियार बन जाऊँगा और भोर होते-होते चीता बन जाऊँगा, फिर बच्चों को उनकी माँओं के पास से घसीटकर ले आऊँगा,” एक अन्य दैत्य ने अपने मुँह से टपकती हुई लार को चाटते हुए कहा।

“मैंने रक्त चूसने वाले राक्षसों का एक जोड़ा पाला है, जो बड़ी ही आसानी से अपना आकार बदल लेते हैं। मैं सीधे द्वार-द्वार खटखटाऊँगा, शिशुओं की तलाश करूँगा और अपने प्रिय पालतू राक्षसों को जल्दी काम खत्म करने पर लगा दूँगा,” अन्य ने कहा।

“परंतु तुम सबमें से कोई भी कुलीन घरों के भीतर तक प्रवेश नहीं कर सकता, कर सकता है क्या?” अपनी धूर्तता व मक्कारी के लिए कुख्यात राक्षसी पूतना ने सबको चुनौती देते हुए कहा।

पूतना को देखते ही कंस के मुख पर चमक आ गई। “मेरी प्रिय पूतना, तुम्हारी क्षमताओं और कौशल पर मुझे सबसे अधिक भरोसा है!” प्यार से मुस्कराते कंस ने पूतना से कहा।

“जानती हूँ महाराज,” राक्षसी ने बड़े घमंड से कहा। “मैं दावा कर सकती हूँ कि जहाँ ये सारे सूरमा असफल हो जाएँगे, मैं वहाँ भी अपना काम कर जाऊँगी। मेरे स्तनों में भयंकर विष भरा हुआ है और यदि मैं किसी भी शिशु को स्तनपान कराऊँ तो तुरंत ही उसकी मृत्यु हो जाएगी।”

“अद्भुत, अद्भुत!” कंस मारे खुशी से उत्साहित हो उठा।

दूसरी तरफ यमुना के उस पार बसे समृद्धशाली गाँव गोपा में आज सभी गाँव वाले बड़े उत्साह और आनंद में थे, क्योंकि उनके राजा नंद के यहाँ पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी। सारे पुरुष उस शुभ अवसर पर उत्सव के आयोजन की तैयारी में जुटे थे, तो सारी महिलाएँ अपनी रानी को बधाई दे रही थीं, शंख बजा रही थीं, मालाएँ पहना रही थीं, गुलदस्ते और अन्य शुभ वस्तुएँ भेंट में दे रही थीं।

जब यशोदा के घर से लोगों की भीड़-भाड़ समाप्त हुई तब खूब सजी-सँवरी, बहुत ही सुंदर-सी स्त्री का घर में प्रवेश हुआ। उसने बहुत ही सुंदर आभूषणों से शृंगार किया था और उसकी चाल से ही तेज व राजत्व झलक रहा था। चूँकि वह उत्सव का दिन था अतः भवन के द्वार सभी के लिए खुले हुए थे। यह जानते हुए भी कि वह स्त्री गोपा की निवासी नहीं है, किसी भी पहरेदार ने उसे भीतर जाने से नहीं रोका।

दासियों ने उसका बड़ा सत्कार किया। उन्होंने सोचा कि सभी की तरह यह भी देवी यशोदा को बधाई देने आई है।

"मैंने सुना है कि राजा नंद और रानी यशोदा के घर पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है। मैं उस बच्चे की एक झलक देखने के लिए बहुत अधिक आतुर हूँ। क्योंकि मैंने हाल ही में अपने बच्चे को खोया है!"

"बड़ा दुख हुआ सुनकर! तुम कहाँ से आई हो, बहन?" देवी यशोदा की प्रमुख दासी ने पूछा।

"मथुरा से," स्त्री ने उत्तर देते हुए देवी यशोदा के लिए बहुत लगाव भरी बातें की। जैसे ही उसकी दृष्टि रत्न जड़ित झूले में लेटे हुए बच्चे पर पड़ी, वह अपलक देखती रह गई– उससे पहले आने वाले लोग भी ऐसे ही उस शिशु को निहारते थे, क्योंकि वह शिशु अद्वितीय रूप से सुंदर था।

परंतु उसके नेत्रों में एक क्षण के लिए जो भयानक दुष्टता चमकी, वह कोई नहीं देख पाया।

वह बड़ी देर तक बच्चे को निहारती रही, फिर अपने मुख पर एक झूठा प्रेम दर्शाते हुए देवी यशोदा से उसने प्रार्थना की–"हे दयालु देवी! चूँकि मैंने पिछले दिन ही अपना बच्चा खोया है, मेरी बहुत इच्छा हो रही है कि आपके पुत्र को स्तनपान कराने की, जिसे मैं बड़ी पीड़ा से रोक पा रही हूँ। क्या आप इस विशेष कार्य के लिए अनुमति देने की कृपा नहीं कर सकतीं?"

"क्यों नहीं, बहन। बड़ी ही खुशी से! मेरे बच्चे को अपने ही बच्चे जैसा समझो। तुम्हारी ममता से यह बच्चा अधिक शक्तिशाली होगा," यशोदा ने बड़े ही प्रेमपूर्वक कहा।

"यह पहले से ही शक्तिशाली है!" स्त्री ने बच्चे को स्तनपान कराते हुए कहा। जल्दी ही उसका चेहरा आश्चर्य से भर गया। "सचमुच शक्ति है इसमें–



अत्यधिक शक्ति-अद्‌भुत शक्ति, मैं बिल्कुल यही कहूँगी। जिस प्रकार यह स्तनपान कर रहा है!" स्त्री बार-बार कहने लगी। उसका स्वर बहुत तीव्र हो गया जैसे कि वह बड़ी पीड़ा में हो।

यशोदा व उसकी दासियों को लगा कि वह अपरिचित स्त्री बच्चे के शक्तिशाली होने की बात पर स्नेह भरा विनोद कर रही है, वे सभी हँसने लगीं।

"तुम सब चुप रहोगी क्या?" उसका बहुत ही कर्कश स्वर सुनाई पड़ा। सबने देखा कि वह बच्चे को अपने स्तन से छुड़ाने का प्रयास कर रही थी। उसकी आकृति बदलने लगी थी। उसका सुंदर मुख न केवल कुरूप बल्कि बड़ा, भद्‌दा और अजीब-सा हो गया था।

देवी यशोदा और उसकी दासियाँ यह सब देख चकित रह गईं। वे सभी बच्चे को वापस छुड़ाने का प्रयास करने लगीं, परंतु असफल रहीं। उस स्त्री का आकार बहुत ही घिनौना था और बढ़ता ही जा रहा था। बच्चा उसके स्तन पर ही था, परंतु यशोदा और उसकी दासियों की पहुँच से बहुत ऊपर था।

उस अपरिचित स्त्री का चेहरा बड़ा ही दैत्याकार व भयानक हो गया था। उसकी जंघाएँ और भुजाएँ बड़ी ही भयावह दिख रही थीं। फिर पूरे भवन को हिला देने वाली एक कर्कश चीख के साथ वह शिथिल होकर गिर पड़ी। वह यशोदा के कक्ष की दीवार से टकराई और उस पलंग पर लगे खंभे उसके भीमकाय आकार की वजह से चूर-चूर हो गए।

भवन के भीतर रहने वाले सभी लोग, दास-दासियाँ, द्वारपाल भागते हुए उस स्थान पर आ गए। उनके पीछे-पीछे गाँव की सारी जनता भी वहाँ पहुँच गई।

देवी यशोदा मूर्च्छित हो चुकी थीं। उनकी दासियों ने राक्षसी के ऊपर चढ़कर बालक को निकाला।

"हे ईश्वर, यह राक्षसी मनुष्य का रूप धारण कर यहाँ क्यों आई थी?" उसके भयानक और पसरे हुए आकार को देखकर नंद ने चौंकते हुए कहा।

"परंतु यह कोई और नहीं, बल्कि राक्षसी पूतना है!" उनमें से एक ने उसे पहचानकर चिल्लाते हुए कहा।

"यह राक्षसी, निश्चय ही इस बालक को अपना विषैला स्तनपान कराकर इसकी हत्या करने आई थी— इसका यह धूर्त चरित्र सभी जानते हैं— परंतु बालक ने तो जैसे उसके जीवन का ही पान कर लिया!" उसके बाद वहाँ एक मनहूस सन्नाटा छा गया।

6

बादलों के ऊपर नाटक

पास से तथा दूर-दूर से सैकड़ों लोग उस भयंकर और प्रभावशाली दृश्य के साक्षी बनने आ रहे थे। राक्षसी पूतना का भयानक व दैत्याकार शरीर टूटी हुई दीवार और खंभे के मलबे के ऊपर फैला हुआ था। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई पहाड़ी गलत घटनास्थल पर गिरी हुई हो। सभी हक्के-बक्के से खड़े थे। स्त्रियाँ अपने छोटे-छोटे बच्चों को दूर लेकर जा रही थीं, क्योंकि वे बच्चे इस अजीब दृश्य को देखकर रोने लगे थे।

वे, जिन्होंने उस राक्षसी को अत्यंत सुंदर, सभ्य और सौम्य स्वरूप में भवन में प्रवेश करते देखा था, उन्हें अपने नेत्रों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। वे अचंभित थे, कैसे छलपूर्वक अपना रूप-रंग बदला जा सकता है? कैसे कपटपूर्ण मुस्कराहट के पीछे अपनी दुष्टता को छिपाया जा सकता है?

जैसे ही पूतना की मृत्यु का समाचार मथुरा तक फैला, कंस हैरान व भौचक्का खड़ा रह गया। पूतना बिजली के समान ताकतवर थी, इसके अलावा उसने अपने शरीर में जो विष इकट्ठा करके रखा हुआ था, वह इतना भयंकर था कि किसी दैत्य को भी तुरंत मृत्यु तक पहुँचा सकता था! फिर धरती पर स्थित एक साधारण नवजात शिशु कैसे उसकी मृत्यु का कारण बन सकता था?

वे दैत्य, जिन्हें नवजात शिशुओं की हत्या करने का कार्य दिया गया था, वे बड़ी ही तीव्रता से अपना कार्य कर रहे थे। वे चुपचाप हर घर में घुसते और एक वर्ष से कम आयु का बच्चा देखते तो उसे उठा लाते। अधिकतर इस कार्य को चोरी-छिपे कर रहे थे। बच्चों के माता-पिता समझ नहीं पा रहे थे कि बच्चे कहाँ गायब हो रहे थे। यदि कोई माँ किसी दैत्याकार आकृति को अपना बच्चा उठाकर भागते हुए देखती भी तो वह मात्र चीख-चिल्ला पाती, जिससे दैत्य को कोई फर्क

नहीं पड़ता। राक्षस को अच्छी तरह पता होता कि उसका पीछा करने वाले मनुष्यों को कैसे चकमा देना है।

सारे राज्य में भय के कारण विलाप का स्वर गूँज रहा था। इससे कंस को थोड़ी प्रसन्नता हुई। उसे यह विश्वास था कि उसका शत्रु जिस किसी भी घर में पल रहा होगा, इन बच्चों की मृत्यु के साथ उन घरों की संख्या में भी कमी होती जाएगी।

परंतु उसकी प्रसन्नता अधिक समय तक स्थायी नहीं रही। नंद के घर में जन्म लेने वाले उस अद्‌भुत शिशु की सूचनाएँ उसे चिंतित कर रही थीं। वैसे वह स्वयं को समझा रहा था कि पूतना की मृत्य मात्र एक दुर्घटना ही थी– हो सकता है कि अपने शरीर में विष इकट्‌ठा करते समय उसने भूलवश स्वयं ही उस विष का पान कर लिया हो, कौन कह सकता है कि नंद का पुत्र वही नहीं है जिसके बारे में भयंकर भविष्यवाणी हुई थी? नंद, मथुरा राज्य के अधीन थे, परंतु अपने गाँव के मुखिया थे। अपने अधिकार क्षेत्र में एक राजा की ही तरह वे भी श्रेष्ठ, शक्तिशाली और लोकप्रिय थे। उनके पुत्र को उठाकर ले जाना कोई साधारण कार्य नहीं होगा।

“यदि मैं दर्जनों की संख्या से बच्चों को मार रहा हूँ तो नंद के पुत्र को न मार पाने का कोई कारण ही नहीं है!” इस विचार से कंस ने स्वयं को समझाया।

अब तो गोपा में उत्सव को दुगुनी धूमधाम से मनाया जा रहा था। जब से लोग जान गए कि कैसे उनके नन्हें राजकुमार ने चमत्कारपूर्वक उस भयंकर राक्षसी का भेद खोला और स्वयं की रक्षा की।

तब भी, उस घटना से नंद और यशोदा के मन में बहुत बेचैनी थी। क्या पूतना स्वयं यहाँ आई थी? या उसको किसी ने भेजा था? यदि वह स्वयं आई थी, तो अब उनका पुत्र उससे सुरक्षित था, परंतु यदि वह किसी अन्य द्वारा दिए गए कार्य को पूरा करने आई थी, तब?

निश्चय ही यह विश्वास करना बहुत कठिन था कि इस अबोध बालक का भी कोई शत्रु हो सकता था, जो अपनी एक झलक से ही लोगों का हृदय जीत लेता है। सारे लोग शिशु के चारों ओर स्नेह व ममता से खड़े थी। नंद उन्हें बच्चे के लिए उत्पन्न प्रेम व आनंद से वंचित करना नहीं चाहते थे। परंतु बच्चे की सुरक्षा को कैसे सुनिश्चित किया जाए?

थोड़ी देर के लिए इस प्रश्न ने उन दोनों माता-पिता को चिंता में डाल दिया, परंतु अचानक ही नंद चमक उठे। "यदि यह बालक उस भयानक पूतना से स्वयं की रक्षा कर सकता है, तो निश्चिय ही, यह अन्य शत्रुओं से भी स्वयं की रक्षा कर लेगा!" उन्होंने अपनी पत्नी से कहा।

यशोदा इस बात से पुनः आश्वस्त हुई।

उस दिन बड़ी सुखद दोपहर थी। माता यशोदा अपने बच्चे को बगीचे में लेकर आईं। उनके साथ में दासियाँ भी थीं। ऊँचे-ऊँचे वृक्षों ने बाग को चारों ओर से दीवार की भाँति घेर रखा था। कोमल और मंद पवन उन वृक्षों की असंख्य शाखाओं से मिलकर मधुर ध्वनि उत्पन्न कर रही थी। सारा बगीचा सुगंधित पुष्पों और स्वादिष्ट फलों से लदा हुआ था। यशोदा की गोद में से कभी वह बालक अपने कोमल हाथों से कलियाँ तोड़ने का प्रयास करता, तो कभी चहचहाती चिड़ियाँ और उड़ती हुई तितलियाँ उसका ध्यान आकर्षित करतीं और वह मुस्करा देता।

देवी यशोदा और दासियों का पूरा ध्यान बालक पर था। वे समझ नहीं पाईं कि कैसे मौसम बदल रहा था। बड़ी ही जोरों से ठंडी हवा चलने लगी। सबका ध्यान आसमान पर तब पहुँचा जब उसका रंग काला होने लगा और हर ओर अंधकार छाने लगा। बादलों के बड़े-बड़े झुंड आसमान पर धीरे-धीरे छाने लगे,वृक्ष बड़े जोर-जोर से हिलने लगे।

"चलो जल्दी, सब वापस चलें," देवी यशोदा ने बच्चे को अपनी छाती से चिपकाते हुए कहा।

अचानक ही धूल से भरी हुई आँधी आई और उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दिया। हर तरफ से उन्हें ऐसा भयंकर स्वर सुनाई दे रहा था मानो हजारों सर्प एक साथ फुफकार रहे हों!

एक प्रचंड बवंडर, अपने मार्ग में आने वाली सभी वस्तुओं को उड़ाता हुआ, चक्करदार तरीके से ऊपर की ओर गति करता हुआ, सीधा उनकी तरफ बढ़ता आ रहा था।

"चलो, देवी यशोदा को चारों ओर से घेरकर सुरक्षा प्रदान करें!" प्रधान दासी ने कहा।

तुरंत सभी दासियाँ उसकी आज्ञा का पालन करने लगीं। तभी उन्होंने जोर-जोर से रोने का स्वर सुना।

"हम सब यहीं हैं देवी, आपकी सेवा में!" उन्होंने यशोदा तक अपना स्वर पहुँचाने के लिए तीव्र स्वर में उत्तर दिया, परंतु वे सभी एक-दूसरे को देख नहीं पा रही थीं।

बवंडर ऊपर आसमान की ओर चला गया। धूल के बादल छँटने लगे। तब दासियों ने देवी यशोदा के रोने का कारण समझा। उनकी गोद खाली थी। बच्चा नहीं था।

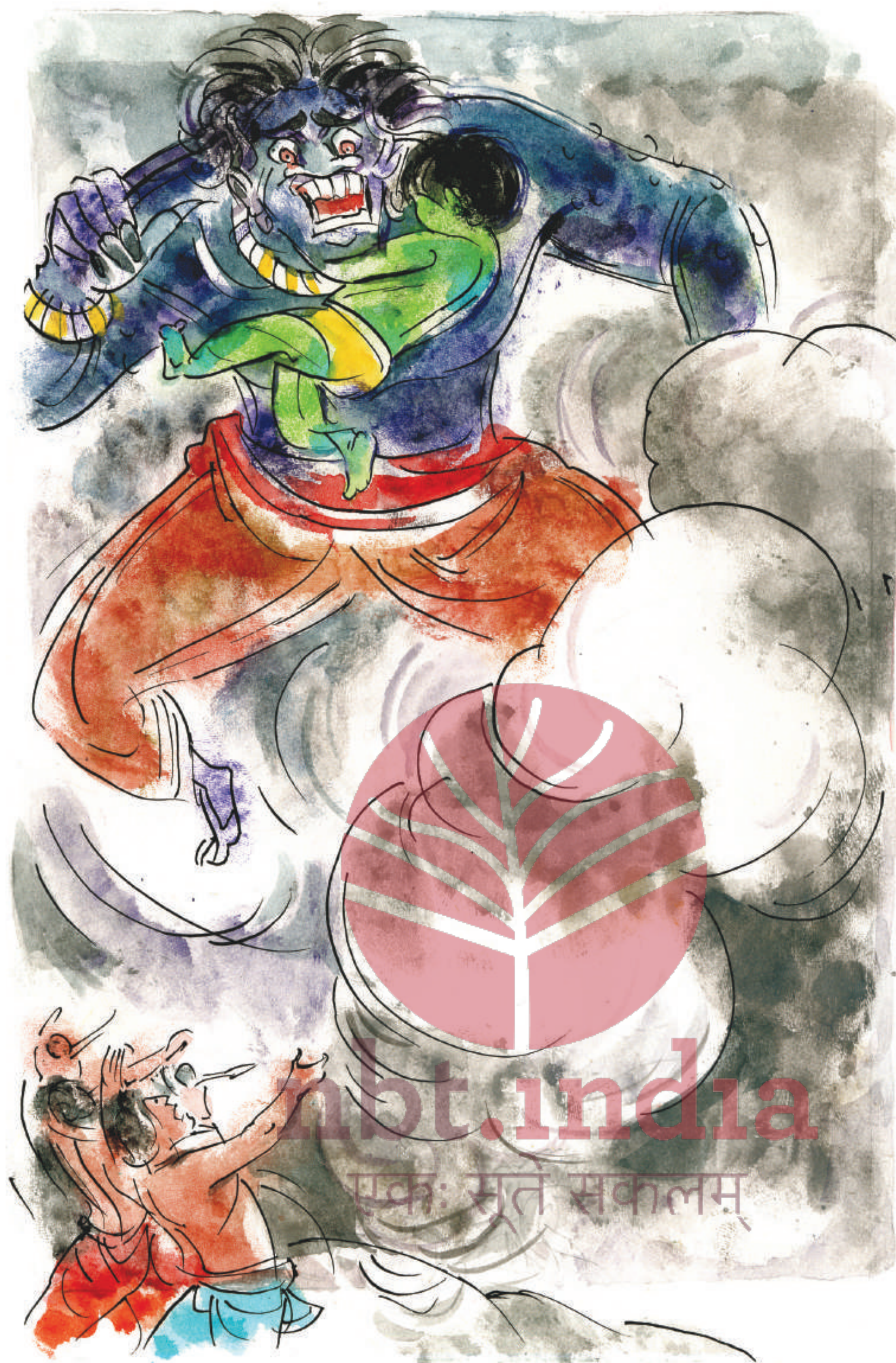
हैरान दासियाँ पूरे बगीचे में बच्चे को खोजने लगीं। परंतु वह कहीं नहीं दिखा। "चला गया! मेरा बच्चा चला गया— बवंडर उसे अपने साथ उड़ा ले गया!" यशोदा जोर-जोर से रोने लगीं और घास पर निढाल होकर गिर पड़ीं। दासियाँ समझ नहीं पा रही थीं कि उन्हें कैसे शांत कराएँ। दो दासियाँ उनके पास सुरक्षा हेतु बेजान-सी बैठ गईं, जबकि अन्य अभी भी बालक की खोज में लगी हुई थीं।

बादलों के ऊपर एक घटना होने जा रही थी। बवंडर, जिसने यशोदा की गोद से बच्चे को उठा लिया था, वह असाधारण बल से युक्त एक दैत्य था— उसमें बवंडर का रूप धर लेने की कला थी! उसका नाम 'तृणावर्त' था और कंस ने उसे इसलिए भेजा था कि वह नंद के बच्चे को खींचकर ऊपर उठा ले और वहाँ से धरती पर नीचे फेंक दे— उसकी हत्या कर दे।

तृणावर्त ने ऐसा ही करने का प्रयास किया। वह तेजी से बच्चे को खींचकर ऊपर बादलों तक ले गया। परंतु वह बच्चे को फेंक नहीं पा रहा था। बच्चे ने उसे कसकर पकड़ लिया था। और वह अपने भयानक दैत्याकार स्वरूप को धारण करने के लिए बाध्य हो गया था।

दैत्य उस बच्चे से छुटकारा पाने का प्रयास करते हुए निराश हो गया, थक गया परंतु असफल ही रहा। बच्चे की भुजाएँ दैत्य की गर्दन के चारों ओर कसती ही जा रही थीं।

अंत में तृणावर्त खीझ कर चीखने लगा। धरती पर लोग इस अजीब-सी बादलों की गड़गड़ाहट से डरे हुए थे। दैत्य का स्वर बादलों से होते हुए पहाड़ी से टकराया और सारे क्षेत्र में गूँज गया। अगले ही क्षण बच्चे ने दैत्य को धक्का दे दिया। दैत्य गाँव व नगर से दूर पहाड़ियों के बीचों-बीच जा गिरा और छिन्न-भिन्न हो गया।



बच्चा बादलों द्वारा धीरे-धीरे नीचे लाया गया और सीधे अपनी माता की गोद में रख दिया गया।

“आ गया— हमारी आँखों का तारा!” दासियाँ उत्साहित होकर बताने लगीं। और बच्चा रोने लगा— जैसे कि वह वायु और बादलों से डर गया हो!

यशोदा ने अपनी आँखें खोली। वह शिशु को जोर से अपनी बाँहों में जकड़कर भवन के भीतर भागीं। पीछे-पीछे सभी दासियाँ भी चली गईं। सभी के मुख पर संतोष, आनंद भरी मुस्कान, साथ ही संदेह भी था कि यह सब कैसे संभव हुआ?

परंतु यह तो हुआ— भले ही असंभव लगे!

7

दो वृक्षों की कथा

मनोरम गाँव गोपा जिस क्षेत्र में स्थित था, उस क्षेत्र का नाम 'बृज' था। बृज चारों ओर से हरी-भरी घास से भरे हुए विशाल मैदान से घिरा हुआ था। साथ ही, मैदान के चारों ओर पहाड़ियों की शृंखला फैली हुई थी। यमुना नदी पहाड़ियों को काटते हुए गाँव के निकट से ही जंगलों से होते हुई बहती थी।

गोपा गाँव के ग्वाले इन मैदानों में अपने मवेशी चराने आते, आनंद से घूमते और लुका-छिपी खेलते। वहीं युवा और वयस्क जंगलों में जाकर फल और लकड़ियाँ इकट्ठी करते। सदियों से यह जंगल यहाँ के निवासियों के लिए बड़ा उदार व परोपकारी रहा है।

परंतु जल्दी ही स्थितियाँ परिवर्तित हुईं।

वह दिन बड़ा ही शांत और उदास-सा था, दोपहर के बाद का समय था। मैदान में चारों ओर चुप्पी छाई हुई थी, बस इधर-से-उधर गायों के रँभाने का आवाज, साथ ही एक बालक के आनंद में गीत गाने का स्वर सुनाई दे रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर में नदी की ओर आती हुई पवन बड़ी-बड़ी लहरों का शोर लेकर आती।

अचानक ही एक भयानक-सी चीख ने उस शांति को चीर दिया। सभी लोग अपने-अपने घरों से दौड़ते हुए रास्तों पर आ गए।

उन्होंने देखा कि वह बालक बहुत अधिक डरा हुआ और जोर-जोर से रोता हुआ मैदान से गाँव की तरफ दौड़ता हुआ जा रहा है।

"क्या हुआ बेटा?" गाँववालों ने उसे रोककर बड़े ही चिंतित स्वर में उससे पूछा।

"बाघ-बाघ!" लड़का जोर से चिलाया। जल्द ही उसने थोड़ा सँभलते हुए बताया कि कैसे वह भयानक जंगली पशु उसकी एक गाय पर झपटा और घसीटते हुए उसे जंगलों के भीतर ले गया।

गाँववाले भौचक्के रह गए। तभी उनमें से एक ने कहा, "जल्दी चलो, अपनी समस्या के बारे में राजा को चलकर सूचित करें।"

बिना समय गँवाए, गाँव के मुखिया नंद ने तलवार उठाई। साथ में गाँव के अन्य लोगों ने धनुष-बाण लिए और सीधे पहुँच गए उस स्थान में जहाँ से बाघ गाय उठाकर ले गया था। मिट्‌टी पर बने हुए पंजों के निशान से उन्होंने जाना कि वह हिंसक पशु सचमुच में बहुत बड़ा था!

नंद ने उसे जंगल में ढूँढ़ने का बहुत प्रयास किया, परंतु असफल रहे। जंगल बड़ा ही विशाल था और जितना वहाँ से दूर होता जा रहा था, भीतर-भीतर ही सघन होता जा रहा था।

उस रात्रि बाघ पुनः वापस आया— इस बार सीधा गाँव के भीतर आ गया। वह एक गौशाला में घुसा और एक बछड़ा लेकर भाग गया। धीरे-धीरे लोगों को यह समझ आया कि एक नहीं, बल्कि और भी बाघ थे, जो गोपा के मवेशियों का चुपचाप शिकार कर रहे थे। उनकी बहुत सारी गाएँ खो चुकी थीं।

गाँव में तेंदुए या लकड़बग्घे का घुस आना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। परंतु बाघों के झुंड का गाँव के भीतर घुसना लोगों को पहली बार सुनाई दे रहा था।

जब से वसुदेव ने देवकी की आठवीं संतान को यशोदा के पास छोड़ा था, उससे पहले ही वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी अपने पुत्र के साथ नंद के घर में रह रही थीं।

जल्दी दोनों भाइयों के नामकरण का शुभ दिन आया। वसुदेव ने अपने पुरोहित को गोपा गाँव भेजा। विद्वान पुरोहित ने दोनों बालकों की जन्मपत्री पढ़कर रोहिणी के पुत्र का नाम 'बलराम' और देवकी के पुत्र का नाम 'कृष्ण' रखा। पुरोहित ने ये नाम इसलिए दिए, क्योंकि वे समझ गए थे कि बड़ा भाई असाधारण शक्ति अर्थात् बल का धनी था और छोटा भाई अनुपम सौंदर्य का। कृष्ण का अर्थ होता है : वह जो अपने सौंदर्य से लोगों का मन आकर्षित कर ले। पुरोहित ने बड़े ही विश्वास से दोनों बालकों के विशेष गुणों को भी उजागर

किया— कि वे दोनों किसी असाधारण व कठिन कार्य हेतु धरती पर भेजे गए हैं। उन्होंने यह भी संकेत दिया कि कृष्ण कोई और नहीं, बल्कि स्वयं भगवान विष्णु के अवतार हैं।

अब नंद गाँववाले आक्रमण कर रहे बाघों के रहस्य को समझ चुके थे। जब भी ईश्वर मनुष्य बनकर धरती पर जन्म लेते हैं, दुष्ट शक्तियाँ बेचैन हो जाती हैं। वे उस अवतारी व्यक्ति को क्षति पहुँचाने का भरसक प्रयास करती हैं। निश्चय ही गाँव में घुस आने वाले ये बाघ इन्हीं दुष्ट शक्तियों द्वारा भेजे गए हैं— क्योंकि यह गाँव ही देव शिशु का घर है।

नंद का भय एक आश्चर्यजनक घटना द्वारा और भी मजबूत हो गया।

नन्हे कृष्ण बड़े ही नटखट हो चुके थे। वे घुटने के बल रसोई में जाते और मटकी को बलपूर्वक खींचकर उसमें भरी मलाई व मक्खन को हाथों में लेकर खा लेते। साथ ही, अपने साथियों को भी खिलाते। वे अकसर ही पकड़े जाते क्योंकि अपने गालों पर लगे हुए मक्खन को साफ करना भूल जाते।

ऐसा लगता जैसे भय क्या होता है उस बालक को पता ही नहीं था! किसी दिन वे एक क्रूर साँड़ की पैनी सींगों पर लटकते हुए दिखाई देते, तो अगले दिन अत्यंत धारदार, नंगी तलवारों से खेलते हुए दिखाई देते।

क्या ऐसे बालक को मुक्त अथवा दृष्टि से दूर छोड़ा जा सकता था? एक दिन देवी यशोदा को कुछ समय के लिए अपने पड़ोस में जाना था। वे अपनी एक भरोसेमंद दासी को कृष्ण की देखभाल के लिए छोड़कर जाना चाहती थीं, परंतु उस समय वहाँ कोई नहीं था। अतः उन्होंने एक नया तरीका अपनाया। दही मथने की रेशमी रस्सी, जो कि धरती पर गड़ी हुई मोटी लकड़ी में बँधी थी और वह लकड़ी दीवार के खंभे से लगी हुई थी, उस रस्सी से कृष्ण को बाँधकर यशोदा निश्चिंत थीं कि वे रस्सी तोड़कर कहीं नहीं जा पाएँगे।

यशोदा के जाते ही कुछ क्षण पश्चात सेवकों ने एक जोर का धमाका सुना। वे यह देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि कृष्ण तेज-बहुत तेज-घुटने के बल उस रस्सी को घसीटते हुए जा रहे थे, जिसमें खंभे से टूटी हुई लकड़ी भी बँधी हुई थी।

सेवकों ने उन्हें भागकर रोकने की जरूरत नहीं समझी। वे रस्सी को बाँध और लकड़ी को घसीटते हुए कितनी दूर जा सकते थे? सभी अचरज से देखते रहे।

परंतु बालक घुटनों के बल बड़ी तीव्र गति से जा रहा था।

पलक झपकते ही वे चौखट पार करते हुए पीछे आँगन की ओर पहुँच गए। अब सभी सेवक उन्हें पकड़कर वापस लाने के लिए भागे। लेकिन बालक की गति तीव्र होती जा रही थी।

वे जल्दी-जल्दी अब बगीचे को पार करने के लिए दो वृक्षों के मध्य से निकले, परंतु मोटी लकड़ी जो रस्सी में बँधी हुई थी, दोनों पेड़ों के बीच में फँस गई। बालक ने रुककर पीछे पहरेदारों की तरह खड़े हुए विशाल वृक्षों को देखा। फिर, अपने नन्हे हाथों से, लकड़ी निकालने के लिए वृक्षों को दूर करने लगे। जो लोग उन्हें देख रहे थे वे हँसने लगे। अब उन्हें भरोसा था कि वे बच्चे को पकड़ लेंगे और गोद में उठाकर वापस ले आएँगे।

परंतु ऐसा लगा कि जैसे कि अविश्वसनीय व आश्चर्यजनक घटना घटने वाली है। वृक्ष जोर-जोर से हिलने लगे। अगले ही क्षण धरती फट गई और वे जड़ समेत धरती के ऊपर आकर गिर पड़े।

धमाके के स्वर और धूल के गुबार को देख सभी लोग घबरा गए। इसी बीच देवी यशोदा वापस आ गईं।

“कहाँ है मेरा बालक?”

वो सेवक जो अभी हक्के-बक्के से खड़े थे, अचानक ही भयभीत हो गए। वे इस कल्पना से ही काँप उठे थे कि उस बच्चे का क्या हुआ होगा।

“कहाँ है मेरा पुत्र?” यशोदा ने दोबारा जोर से पूछा। वृक्षों का अचानक से गिर जाना बच्चे का दिखाई न देना और सेवकों के रोने जैसी सूरत से वह परेशान हो गईं।

धूल के गुबार धीरे-धीरे बैठने लगे। ध्वस्त वृक्षों के बीच से हँसने का स्वर सुनाई दिया। जैसे बादलों के बीच से निकलता हुआ चंद्रमा अत्यंत ही सुखद लगता है, वैसे ही टूटी हुई टहनियों और पत्तियों के बीच से दिखता हुआ कृष्ण का मुस्कराता हुआ मुखड़ा अत्यंत ही प्रिय लग रहा था।

माता यशोदा दौड़ती हुई बालक के पास गईं और उसे अपनी गोद में उठा लिया। दासियाँ भी दौड़ती हुई आईं और बालक की कमर से बँधी हुई रस्सी को खोला।

इतने विशालकाय और पत्थर के समान तने वाले दो वृक्ष ऐसे ध्वस्त कैसे हो सकते थे? मात्र एक शिशु के साधारण से आघात से इतना बड़ा चमत्कार संभव था क्या?



परंतु गोपा के बालकों में से एक बालक ने कुछ अत्यंत अद्भुत दृश्य देखा था। जब वृक्ष जोर-जोर से हिलने लगे, तब उनकी चोटी पर स्थित पत्तियों ने दो भयंकर राक्षसों का रूप ले लिया। ऐसा लग रहा था जैसे वे नीचे बालक की ओर बहुत कृतज्ञता और प्रसन्नता से देख रहे थे। उस बालक को ऐसा लगा कि जैसे वे दैत्य कृष्ण को साष्टांग प्रणाम कर रहे थे।

गाँव में स्थित ऋषि-मुनि और कुछ लोग— उन दोनों वृक्षों के रहस्य को जानते थे। एक समय की बात है, दो वयस्क गंधर्व नारद ऋषि को बहुत प्रताड़ित कर रहे थे। उनके उत्पात के लिए ऋषि ने उन्हें शाप दे दिया कि वे दोनों वृक्षों के समान जन्म लें और 100 वर्षों तक मूक खड़े रहकर लोगों के द्वारा किए जाने वाले उत्पात को देखें।

बाद में वे वृक्ष, असीम आनंद से भर गए, जब उन्होंने कृष्ण को आते हुए देखा। उन्हें लगा— जैसे उनका शाप एक वरदान बनकर खत्म होने वाला था। ऋषि ने यह भी बताया था कि जब कृष्ण खेलते-खेलते उन्हें स्पर्श करेंगे तो वे दोनों इस शाप से मुक्त हो जाएँगे।

नंद यह सब नहीं जानते थे, अतः उन्होंने सोचा कि इस प्रकार से वृक्षों का नष्ट होना शायद कृष्ण को मारने के उद्देश्य से दुष्ट शक्तियों की कोई चाल थी।

इस आश्चर्यजनक और भयंकर घटना के शांत होने पर नंद ने विचार किया कि गोपा गाँव को छोड़कर अन्य स्थान पर बसना उनके व उनकी प्रजा के लिए उत्तम रहेगा।

जल्द ही इस विचार को उन्होंने निर्णय में बदल दिया।

8

माखन गायब होने का रहस्य

जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे, कृष्ण व बलराम की शरारतों को रोक पाना यशोदा व रोहिणी के लिए बहुत कठिन होता जा रहा था। जब उन दोनों को शरारत सूझती, तो हवा के समान तेज हो जाते और छलपूर्वक सबको सताते। भवन में रहने वाली दासियों के लिए भी उन्हें पकड़ पाना असंभव हो जाता।

और जब वे छिप जाते, चतुर-से-चतुर गुप्तचर भी ढूँढ़ नहीं पाते। वे दोनों भवन के सभी कोने और छिप सकने वाली जगह जानते थे। अन्न भंडार, बगीचे, फल उद्यान, जहाँ झाड़ियों के पीछे सियार और नेवले छिपते थे, तालाब के किनारे बने पत्थर की सीढ़ियाँ जहाँ पानी पर खिले हुए पुष्पों के बीच में कछुए तैरा करते थे– ये सारी जगहें उन्हें अपने खिलौने की आलमारी सरीखी सहज लगती थीं।

जब तक वे नंद के घर और उसके चारों ओर फैले हुए परिसर में रहते, उन्हें किसी भी प्रकार की कोई चिंता नहीं होती। परंतु वे स्वयं को आस-पड़ोस के भी घरों का स्वामी समझते थे।

यदि एक घर से ताजे मक्खन की मटकी गायब करते, तो बगल वाले घर से दूध के ऊपर की मलाई साफ कर जाते।

और इन शरारतों में न केवल ये दो राजकुमार ही शामिल थे, बल्कि गाँव का एक भी बालक ऐसा नहीं था, जो उनका साथ न देता हो। गोपा गाँव के सभी बालकों में इन दोनों भाइयों की बड़ी धाक थी! हाय, दिन-प्रतिदिन इस धमाचौकड़ी टोली ने गाँव के किसी भी घर की रसोई या भंडारगृह को नहीं छोड़ा और लोगों का चैन छीन लिया।

एक दिन जब देवी यशोदा अपने आँगन में खड़ी थीं, उन्होंने आस-पड़ोस की बहुत औरतों को अपनी ओर आते देखा। ये कोई नई बात नहीं थी। उन्हें यशोदा

से बतियाना बड़ा भाता था। बल्कि संपूर्ण गोपा गाँव एक परिवार समान था। परंतु इस बार ये औरतें बड़ी हैरान और समस्याग्रस्त दिखाई पड़ रही थीं, जैसे कि वे जो कहने आई हैं वह उन्हें न चाहते हुए भी कहना होगा!

"आओ बहनों, ऐसा लगता है जैसे कि कोई गंभीर बात हो गई है!" यशोदा ने कहा।

"हाँ, कुछ असामान्य है, जो हमें आपसे कहना ही होगा। यह बात बलराम और कृष्ण के बारे में है। कृष्ण, भले ही छोटा है, परंतु इन सारी शरारतों के पीछे उसी की बुद्धि होती है," एक औरत ने हाथ हिला-हिला कर यशोदा को बताया।

"शरारत?" यशोदा ने झूठा अचरज दिखाते हुए कहा, जबकि यह सूचना उनके लिए नई नहीं थी।

सभी एक साथ एक स्वर में बोलीं—

"हाँ, हाँ, शरारत..."

"शरारत, पूरी शरारत..."

"जिसका कोई अंत नहीं..."

हर एक औरत दोनों बालकों की शिकायत लिए तैयार खड़ी थी। कोई भी अपनी शिकायत समाप्त करने से पहले दूसरी को बोलने का अवसर ही नहीं दे रही थी।

"मैं समझ गई, बिल्कुल समझ गई, बहनों। दोनों नटखट बालकों ने तुम्हारे दूध, दही, मक्खन और मलाई के लिए उत्पात मचा रखा है। परंतु क्या तुम सब अपनी-अपनी मटकी ऊपर नहीं टाँग सकतीं— उनकी पहुँच से बहुत ऊपर?" यशोदा ने आग्रह किया।

"हमने यह प्रयास भी कर लिया। हे देवी! सचमुच हमने ऐसा ही किया, परंतु सब व्यर्थ रहा!" पुनः सभी एक साथ बोल पड़ीं।

"यह तो बड़ा अचंभा है!" यशोदा ने चिंतित स्वर में कहा।

"हमें भी कम अचंभा नहीं हुआ है!" औरतों ने कहा।

"लो, कृष्ण आ गया। मैं तुम सभी के सामने उसे दंड दूँगी," द्वार के पीछे से झाँक कर मुस्काते हुए बालक की ओर देखकर यशोदा ने कहा। "अब क्या तुम सब लोग दूर-दूर फैलकर एक घेरा नहीं बनाओगी, ताकि यह नटखट बालक बचकर भाग न पाए।"

अपने छोटे-से मुकुट में मोरपंख सजाए हुए, कमर में सोने की करधन लटकाए हुए, भागते-भागते कृष्ण यशोदा के पास आए। मैया यशोदा की गोद में जाने की इच्छा से उन्होंने अपने हाथ ऊपर उठाए हुए थे। परंतु यशोदा चिंतित मुद्रा में खड़ी थीं, उनके हाथ उनकी कमर पर थे, उन्होंने बच्चे की ओर थोड़ी भी ममता नहीं दिखाई।

और वह बालक, अपने हाथ उठाए, उन औरतों की ओर देखने लगा जैसे कि वह अपनी माँ की कठोरता के प्रति उनसे सहानुभूति चाह रहा हो।

एकदम से सभी औरतें अपनी बाहें फैलाकर बच्चे की ओर बढ़ीं, जो अभी स्थान-स्थान पर कृष्ण को पकड़ने के लिए सुरक्षा में लगी थीं, अब उसे गोद में लेने के लिए आतुर हो गईं। कृष्ण, एक औरत की ओर आगे बढ़ते और जैसे ही वह उन्हें गोद में लेने के लिए बढ़ती, पुनः खिलखिलाते हुए उलटे पाँव वापस भागते, फिर दूसरी औरत की ओर जाते और ऐसे ही खेलते। सभी ठहाका लगाकर हँसने लगीं— कृष्ण की करधन इस गुंजित स्वर में संगीत की ध्वनि के समान बज रही थी— और प्रत्येक औरत मुग्ध होकर इस खेल को खेल रही थी। कृष्ण एक को थोड़ा-सा छूते और दूसरी ओर भाग जाते।

यह सब देर तक चलता रहा, इस बीच यशोदा दूर खड़ी अचरजपूर्ण आनंद से सारा नाटक देख रही थीं।

इन औरतों की शिकायत का क्या हुआ? इनकी उलाहना का क्या हुआ?

परंतु वे अधिक देर तक मुस्कराती हुई खड़ी नहीं रह सकीं। औरतों को आनंद में देखकर उनका हृदय भी ममता से भर गया। उन्हें पता ही नहीं चला कि वे कब आगे आईं और कब कृष्ण को गोद में उठा लिया। कुछ देर तक हँसने-खिलखिलाने के बाद औरतें भी वहाँ से चली गईं।

सचमुच, वे सुख व आनंद की चमक साथ लेकर गईं।

यह रहस्य जानने में यशोदा को कुछ और दिन लगे कि मक्खन-मलाई के पात्र को बच्चों की पहुँच से दूर, ऊपर लटकाने पर भी वह कैसे गायब हो जाता है। उन्होंने स्वयं उस पात्र को बहुत सुरक्षित तरीके से लटकाया हुआ था।

संध्या का समय था। वह नदी से रोज की अपेक्षा जल्दी लौट आईं। उन्हें लगा जैसे कि उनकी रसोई में चुपचाप कुछ हो रहा है।



धीरे-धीरे, हल्के कदमों से उन्होंने खिड़की से रसोई में झाँक कर देखा। वहाँ का दृश्य ऐसा था जिसकी वह कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थीं। वहाँ चार-पाँच लड़के थे, जो घुटनों पर खड़े, एक-दूसरे की पीठ पर चढ़े हुए थे। उस मानव पर्वत की चोटी पर कृष्ण खड़े थे और मक्खन के गोले निकालने में लगे हुए थे। यशोदा हक्की-बक्की-सी चुपचाप खड़ी देखती रहीं। परंतु जैसे ही कृष्ण ने उन्हें देखा, नीचे कूद पड़े। बालक भी चकित होकर अपनी योजना से छिन्न-भिन्न हो गए और एक कतार में ठिठियाते हुए द्वार से निकल गए। निश्चय ही कृष्ण, उनमें सबसे आगे थे।

कुछ देर बाद बलराम यशोदा के पास भागते-भागते आए।

"चाची! कृष्ण मक्खन नहीं खा पाया, इसलिए उसने मिट्टी की धूल भरकर खा ली!" उन्होंने बड़ी हैरानी से सूचना दी।

"आज इस उपद्रवी बालक को सबक सिखाना ही होगा!" यशोदा ने चिल्लाते हुए कहा। वह तुरंत रसोई से भागती हुई बरामदे में आईं और कृष्ण को पकड़ लिया।

"हठी, उपद्रवी बालक! मुँह खोल अपना!" घुटने के बल बैठकर, कृष्ण के नन्हे हाथों को जोर से पकड़कर यशोदा ने आदेश दिया।

परंतु कृष्ण अपना मुँह बंद रखे और ठुड्डी ऊपर किए रहे।

"कितनी मिट्टी है तेरे मुँह में?" मैया ने पूछा, और धीरे-से बालक के गालों को दबाया।

कृष्ण ने अपना मुँह खोला।

देवी यशोदा ने उनके मुँह में झाँका, तो स्तब्ध और मुग्ध होकर रह गईं।

उन्होंने बालक के मुँह में संपूर्ण ब्रह्मांड देखा– तारे, सूर्य, ग्रह, बादल, उल्कापिंडों का इधर-से-उधर भ्रमण और बवंडर।

यह दृश्य पलक झपकते ही ओझल हो गया। माता यशोदा निढाल होकर बैठ गईं, परंतु अब परम शांति की स्थिति में थीं।

9

घाटी का संदेश

नदी के उस पार एक हरी-भरी चौड़ी घाटी थी। उस पर प्रहरी के समान एक पहाड़ी थी, जिसका नाम 'गोवर्धन' था।

वह घाटी नंद के अधिकार क्षेत्र के भीतर ही आती थी। उन्होंने अपने गाँव को उस घाटी पर बसाने का निश्चय किया। एक कारण यह था कि घाटी बड़ी सुंदर थी, अन्य कारण था बाघों का जंगल से निकलकर गाँव में घुस आना, परंतु एक बड़ा कारण था कि नंद को ऐसा लग रहा था, जैसे दुष्ट शक्तियों ने गाँव को अपना निशाना बना कर रखा हो। उनके आदेशानुसार, गोपा के निवासी उस घाटी में अपना घर बनाने लगे थे। इस नए स्थान का नाम था 'वृंदावन'।

एक शुभ दिन, पूरे गाँववासी संपूर्ण रूप से घाटी में रहने जा रहे थे— आगे-आगे गाँव के पुरुष अपने मवेशियों को हाँकते हुए ले जा रहे थे— उनके पीछे रथों की एक जोड़ी, जिसमें नंद का परिवार था। साथ ही, बैलगाड़ियों का दल था जिसमें महिलाएँ, बच्चे और उनकी धन-संपत्ति रखी हुई थी। अपनी जानी-पहचानी जगह को छोड़ते हुए लोग बड़े दुखी थे, परंतु नए स्थान में, नए जीवन की शुरुआत की आशा और विश्वास से उत्साहित भी थे।

यमुना नदी से सामान को उस पार ले जाने के लिए नौकाओं की व्यवस्था की गई थी। मवेशी, धीमी-धीमी धारा में तैरते हुए पार जा रहे थे, युवा ग्वाले उनको हाँक रहे थे और छोटे बालक उन पर बैठे हुए थे।

कृष्ण और बलराम रथ पर अपनी माँ की गोद में बैठे हुए आँखें फाड़-फाड़ कर प्रकृति के सौंदर्य देखकर चकित हो रहे थे। 'अद्भुत!' बीच-बीच में उत्साहित होकर कहते जाते थे। सैकड़ों वृक्ष कोमल हवा के स्पर्श से लहरा रहे थे। और उनकी सरसराहट का स्वर मानो उन दोनों का स्वागत कर रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे वृक्ष असीम शांति में हों और दोनों से कह रहे हों, "हमारे लिए आपके दर्शन से अद्भुत कुछ भी नहीं है!"

कृष्ण व बलराम को यह नया स्थान बड़ा ही मनमोहक लगा। जब सभी बड़े लोग अपने-अपने घरों को व्यवस्थित करने में, सड़क निर्माण में, तालाब खोदने में व्यस्त हो गए, कृष्ण और बलराम अन्य बालकों के साथ घास के मैदानों में उछलकूद कर रहे थे, लुका-छिपी खेल रहे थे। नदी के किनारे कदम के बहुत-से वृक्ष लगे थे, बीच-बीच में फलों के, फूलों के और तरह-तरह के बेर के पेड़ लगे हुए थे। चिड़ियों के चहचहाने से सारा वातावरण जादुई लग रहा था। हवा कभी कोमल तो कभी तीव्र बहने लगती, मानो बालकों के साथ वह भी उत्साहित थी। कभी वे घास के ऊपर लोटते, तो कभी नदी में कूदकर पानी में छपछपाते।

उत्साहित पवन ऐसी सुगंध बिखेर रही थी, जैसे कि घाटी में समय से पूर्व ही बसंत आ गया हो। कोयल की कूक एक अद्‌भुत-सा रोमांच पैदा कर रही थी। सारा जंगल रंग-बिरंगे पुष्पों से ऐसे लदा हुआ था, जैसे आसमान से उतरे सैकड़ों इंद्रधनुषों को वृक्षों ने अपने पुष्पों में भर लिया हो।

मौसम ने वृंदावन को सचमुच बहुत सुंदर बना दिया था।

अचानक ही, उस दोपहर का वातावरण इतना सुखद हो गया था कि ऐसा आनंद किसी ने पहले अनुभव नहीं किया था। बल्कि, वहाँ का बसंत भी अनोखा था— पृथ्वी पर जैसे स्वर्ग उतर आया हो। नदी के किनारे किसी निर्जन स्थान से बाँसुरी की धुन सुनाई देने लगी। किसी ने भी इससे पहले कभी इतनी मीठी धुन नहीं सुनी थी। जिसने भी उसे सुना, वह मंत्रमुग्ध हो गया। सभी अपना काम, अपनी चिंताएँ और दायित्व सब भूल गए। वे मोहित से खड़े रहे— उस मधुर धुन ने उनके हृदय को पवित्रता और सद्‌भावना से भर दिया।

किसी को लग रहा था माने कोई भूला हुआ, अत्यंत प्रिय मित्र कहीं दूर क्षितिज से पुकार रहा हो, तो किसी को लग रहा था कि स्वप्न में स्थित किसी द्वीप ने बुलावा भेजा हो, जहाँ केवल सुख है परंतु उसका पता ज्ञात न हो!

परंतु वे, जो अपनी सुध-बुध गँवाए घर से बाहर भागते हुए आए— जैसे किसी चुंबक ने उन्हें खींच लिया हो- वे गाँव की स्त्रियाँ थीं। वे उस गाँव के घरों की बहू-बेटियाँ थीं, जो स्नान करने और पानी भरने के लिए नदी पर आने के अलावा घर से कहीं बाहर नहीं निकलती थीं।

धीरे-धीरे वे सब मैदान में एकत्र हो गईं और सूर्यास्त के धुँधले प्रकाश की ओर, जहाँ से वह धुन आ रही थी, जाने लगीं। सबसे आगे राधा थी— सभी महिलाओं में सबसे अलग— देवी के समान सुंदर।



नदी के किनारे पहुँचते ही राधा ने दौड़ना शुरू कर दिया। अन्य स्त्रियाँ भी उनके पीछे-पीछे भागने लगीं। धीरे-धीरे बाँसुरी की तान और स्पष्ट सुनाई देने लगी। हवा बहनी बंद हो गई कि कहीं उसका बहाव बाँसुरी की धुन में विघ्न न डाल दे। न तो चिड़ियाँ चहचहा रही थी, न ही मवेशी रँभा रहे थे।

जल्दी ही राधा ने वह स्थान खोज लिया जहाँ से धुन आ रही थी। कदंब के वृक्ष के नीचे बालक कृष्ण खड़े हुए थे। बाँसुरी बजाते हुए अपनी ही धुन में प्रेम से नाच रहे थे। उनके चारों ओर मैदान और वृक्ष पर, दर्जनों मोर पंख फैलाए नाच रहे थे। राधा और उनकी सखियाँ चुपचाप घुटने टेककर कृष्ण को नाचते हुए देखने लगीं। क्या यह आनंद था? क्या यह परम सुख था? यह तो, उन्हें पता था, परंतु इसके अलावा कुछ और भी था। इस भावना को वे शब्दों में नहीं बता सकती थीं।

बड़े-बड़े बादल वहीं ऊपर आसमान को घेरकर मँडराने लगे। परंतु वे किसी चमत्कार से बँधे हुए लग रहे थे। यहाँ तक कि यमुना नदी ने भी अपनी मीठी कलकल ध्वनि को धीमा कर दिया था।

समय बीत गया। सूर्यास्त हो गया। कृष्ण ने मुस्कराते हुए बाँसुरी बजाना बंद कर दिया। कितनी मधुर मुस्कान थी वह! ऐसा लग रहा था मानो वृक्ष, नदी, धरती, आसमान सभी उनके साथ मुस्करा उठे हों।

कृष्ण अपने घर की ओर भागे। माता यशोदा पहले से ही मैदान में बेचैनी से कृष्ण की राह देख रही थीं। तभी सारे बादल एक-दूसरे से अलग होने लगे और सारे आसमान को ढक लिया। जैसे ही घाटी से होते हुए तेजी से ठंडी हवा बहने लगी, चारों ओर बादलों की गड़गड़ाहट और वृक्षों की तेज सरसराहट सुनाई देने लगी।

राधा और उनकी सखियाँ धीरे-धीरे जा रही थीं। बूँदा-बाँदी शुरू हो चुकी थी और जल्दी ही तेज वर्षा होने लगी। वे सभी पूरी तरह भीग गई थीं।

परंतु अभी-अभी, बाँसुरी की धुन के साथ वे जिस आनंद की वर्षा में भीगकर आई थीं, उससे उनका मन उनके भीतर की सारी बुराई, सब धुल चुका था और वे तारों की भाँति चमक रही थीं।

उनमें से कितनों को यह ज्ञात होगा कि गोपा गाँव के आस-पास उनका जन्म लेना एक सौभाग्य था ताकि वे 'श्रीकृष्ण' से मिल पाएँ।

10

झील में आतंक

यमुना नदी के मोड़ से लगी हुई 'कालिंदी' नामक एक झील थी। वह जिस स्थान पर थी, वह स्थान बहुत ही लुभावना था, हरे-भरे चरागाह और बगीचे उससे लगे हुए थे। उसके किनारों पर लगे हुए बड़े-बड़े पुराने वृक्ष उस पर अपनी शाखाएँ फैलाए हुए थे, परंतु एक बहुत विचित्र बात थी कि एक भी चिड़िया वहाँ नहीं चहचहाती थी। यहाँ तक कि खाली घोंसले भी हवा के तेज बहाव से भी वर्षो पहले उड़ गए थे।

एक बार प्रवासी चिड़ियों का झुंड यहाँ आकर पेड़ों पर रहने के लिए स्थान खोजने का प्रयास करने लगा कि अचानक ही सारे पक्षी पानी में गिर गए और डूब कर मर गए।

झील के ऊपर छाए हुए वृक्ष मुरझा गए थे। कभी भूल से यदि कोई हिरण या गाय झील का पानी पी लेते तो तुरंत मर जाते।

यह कोई अचरज की बात नहीं थी कि लोग उस झील के आस-पास भी जाने से कतराते थे। वे उस भूतिया जगह से दूर से ही बचकर निकलते थे। परंतु हमेशा से ऐसा नहीं था। एक समय था, जब यह स्थान अत्यंत पवित्र माना जाता था। झील के समीप कुटिया में, सौबरी रहा करते थे। उनका अधिकतर समय झील के किनारे ही या तो ध्यान करते हुए या शांत एवं शीतल वातावरण का आनंद लेते हुए व्यतीत होता था। झील में रहने वाली मछलियाँ और कछुए तो जैसे उनके मित्र ही थे। वे ऋषि के पास बिना डरे आते, बल्कि खेलते थे।

एक दिन, झील के ऊपर से उड़ते हुए गरुड़ पक्षी, जो भगवान विष्णु के सेवक थे, ने स्वच्छ जल में एक बड़ी मछली को तैरते हुए देखा और उस पर झपटे।

"रुको, रुको! इस झील के सभी जीवों की सुरक्षा मैं करता हूँ!" ऋषि चिल्लाए। परंतु भूखे गरुड़ ने उनकी चेतावनी को अनसुना कर दिया।

क्रोधित ऋषि उन्हें बहुत कठोर शाप देने वाले थे, परंतु उन्हें याद आया कि गरुड़ पक्षी भगवान विष्णु के सेवक हैं। उन्होंने अपने क्रोध को रोकते हुए एक साधारण शाप दिया— "यदि कभी तुम्हारी परछाईं इस झील पर पड़ी या कभी तुमने इसके जल को छुआ, तो तुम वहीं भस्म हो जाओगे!"

गरुड़ उड़कर चले गए, परंतु कालिंदी उनके लिए वर्जित हो गई। भले ही अब ऋषि नहीं रहे और बहुत समय बीत चुका था।

गरुड़ के शाप की यह बात भयंकर सर्प कालिया को पता थी। एक दिन उसने गरुड़ को अपने क्षेत्र में आने की चुनौती दे दी। जब पक्षीराज गरुड़ उसका पीछा करने लगे जो कि पकड़ने पर उसे खा ही जाते, कालिया किसी तरीके से कालिंदी झील पहुँच गया। अब वह बिल्कुल सुरक्षित था।

कालिया एक दैत्याकार जीव था, जिसके कई फन थे। मात्र गरुड़ ही उसका विनाश कर सकते थे। चूँकि उसे उस शाप के बारे में पता था, जिसके कारण गरुड़ उस झील के पास कभी नहीं आते थे, वह बहुत अहंकारी और जिद्दी हो गया था। जल्दी ही उसका पूरा परिवार भी वहाँ आ गया और वे जो विष श्रावित करते, जिससे सारा जल इतना विषैला हो गया था कि कोई भी अन्य जीव उसकी एक बूँद भी पीता तो तुरंत वहीं मर जाता। उन सर्पों के साँस लेने व छोड़ने के कारण वहाँ का वायुमंडल भी विषैला हो गया था। इसलिए वहाँ के सारे वृक्ष झुलस गए थे और झील के ऊपर से गुजरने वाले पक्षी मर जाते थे।

वृंदावन में दोपहर का समय था। कुछ कबूतरों की गुटरगूँ के अलावा चारों ओर सन्नाटा था। थोड़ी देर पहले कृष्ण नंद के घर के बाहर आँगन में गाँव के बालकों के साथ खेल रहे थे। माता यशोदा, घर के कामों के बीच, बालकों का कोलाहल न सुनाई देने के कारण कुछ अशांत हो गईं। उन्होंने खिड़की से बाहर झाँका। बच्चे वहाँ नहीं थे। केवल बलराम थे, जो भूरे बछड़े को बाँध रहे थे।

"कृष्ण कहाँ है?" बाहर निकलते हुए उन्होंने पूछा।

"मुझे कैसे पता होगा! मैं तो बगीचे में था और बस अभी लौटा हूँ।" बलराम ने उत्तर दिया। फिर उन्होंने चारों ओर नजर दौड़ाई। उसके बाद वे मुख्य द्वार खोलते हुए बाहर जाकर देखने लगे। माता यशोदा अभी उन्हें देख रही थीं।

"क्या कृष्ण वहाँ है?" उन्होंने जोर से आवाज देकर पूछा।

बलराम ने हाथ हिलाकर बताया 'नहीं'।

"कहाँ है वो?" माता यशोदा ने अपना धैर्य खोते हुए कहा। तब तक उनके सेवकों ने भी यशोदा का स्वर सुना। वे सब कृष्ण को ढूँढ़ने के लिए अलग-अलग दिशाओं में भागे। दो बगीचे की तरफ गए, एक फल उद्यान की तरफ, तो दो महल के हर कोने में उन्हें ढूँढ़ने लगे। जल्दी ही सभी सेवक और गाँव के बालक, कृष्ण को ढूँढ़ने के लिए मैदान की तरफ भागे।

जब वे कृष्ण को उनके सभी ठिकानों पर, चरागाहों और नदी के किनारे ढूँढ़ चुके, तब एक युवक वृक्ष की चोटी पर चढ़कर घाटी की ओर देखने लगा। वह अचानक जोर से चीखा।

"क्या बात है?" वृक्ष के चारों ओर एकत्रित लोगों ने उससे बड़ी अधीरता से पूछा।

वह युवक कुछ न बोल सका, मात्र उस भयानक स्थान– कालिंदी झील– की ओर इशारा किया।

"वहाँ पर दो बालक लेटे हुए दिख रहे हैं- कालिंदी झील के किनारे!" वह चिल्लाता हुआ जल्दी-जल्दी उतरा।

'हो सकता है वे केवल बेहोश हुए हों!' अन्य लोगों ने कहा।

वे सभी यह जानते थे कि यदि उन बालकों का जीवन चाहिए तो उन्हें उस झील के विषैले वातावरण से जल्दी-से-जल्दी निकालकर लाना होगा। परंतु वे वहाँ जाने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। वे हाँफते-हाँफते मुखिया नंद, यशोदा और अन्य सभी को सूचित करने भागे।

वहाँ तो खलबली ही मच गई। हर कोई कालिंदी की ओर भागा। यशोदा भी– आँसू पोंछते हुए सबके साथ वहाँ पहुँची।

वहाँ पहुँचकर, वहाँ का दृश्य देखते ही यशोदा बेहोश हो गई– बाकी सभी भौचक्के खड़े रहे।

कृष्ण के साथी अपने पैर झील के पानी में डाले, बेसुध लेटे हुए थे। परंतु कृष्ण तो स्वयं ही झील में थे। वह दृश्य भयानक से भी भयानक था– कालिया सर्प ने कृष्ण को बुरी तरह से जकड़ रखा था, अपनी पूँछ उनकी छाती के चारों ओर कुंडली समान लपेटी थी। कृष्ण एक पतले से वृक्ष का सहारा लिए हुए थे।

किसी को कुछ सूझ ही नहीं रहा था कि अचानक बलराम आगे आकर चिल्लाए— "क्या कर रहे हो, कृष्ण? क्या तुम मात्र एक सर्प से डर गए? मुझे तो लगा था कि तुम वृक्ष का सहारा लेने के अलावा कुछ और करके दिखाओगे!"

कृष्ण ने बलराम की ओर देखा और मुस्कराए। अगले ही क्षण, उन्होंने वृक्ष का सहारा छोड़ दिया और कसमसाते हुए, सर्प की जकड़ को छुड़ाते हुए अपने कोमल हाथों से उसके फणों को दबाया और उन पर चढ़ गए।

और वे नृत्य करने लगे— जैसे कि वह सर्प का फण नहीं, बल्कि नरम-सा रंग-बिरंगा मंच उनके नृत्य करने के लिए बनवाया गया हो। जैसे ही सर्प अपनी पूँछ से उन्हें कोड़े की तरह मारने का प्रयास करता, वे उसे पकड़कर जोर से दबा देते।

सर्प छटपटाने और कराहने लगा, जोर-जोर से पानी में खलबली मचाने लगा। उसकी फुफकार तूफानी लहर के समान सुनाई दे रही थी।

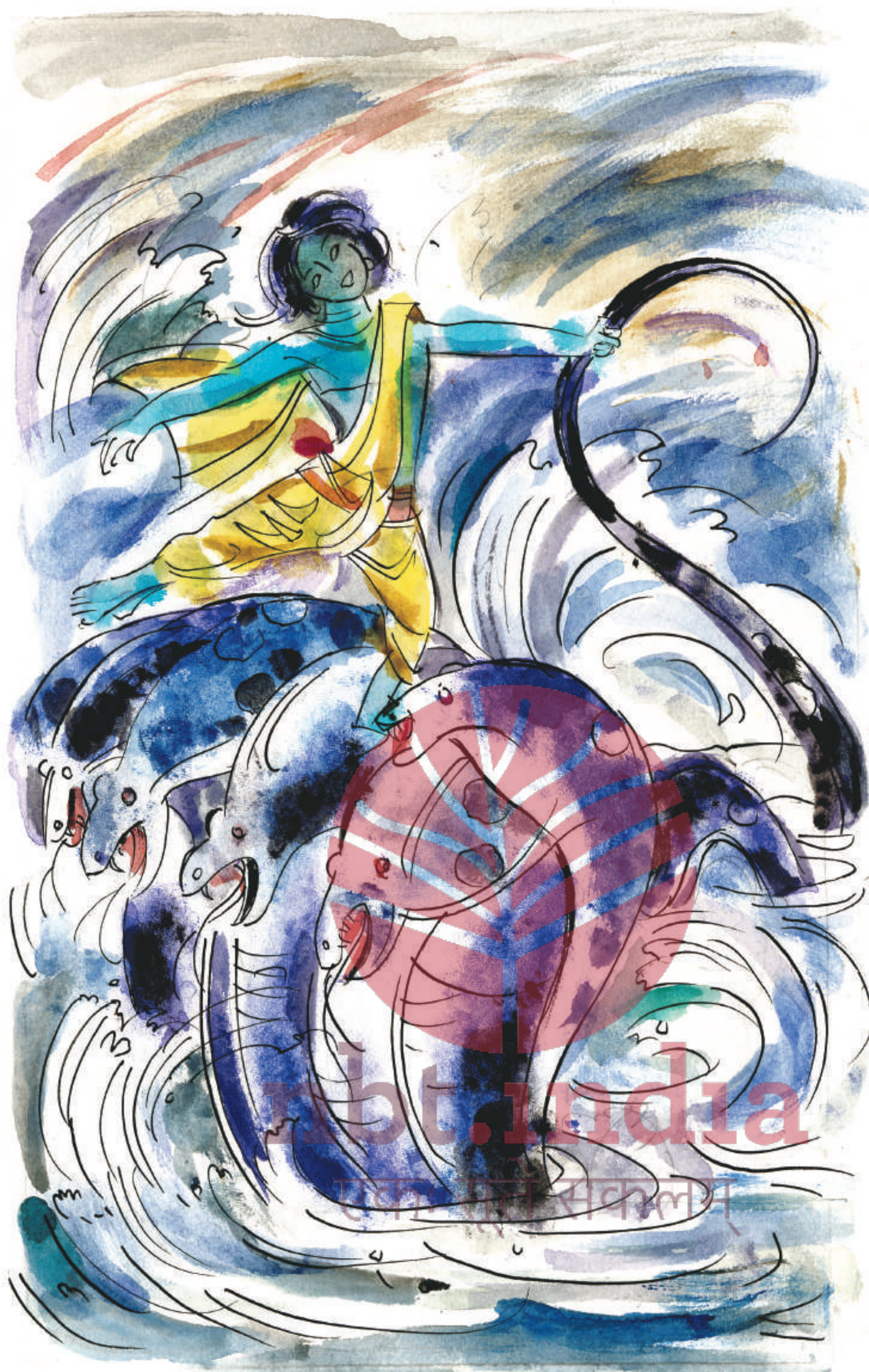
जल्दी ही वह रक्त की उलटी करने लगा। उसकी पत्नियाँ जल के बाहर आ गईं। हाथ जोड़कर अपने पति के प्राणों को छोड़ देने के लिए कृष्ण से प्रार्थना करने लगीं। उनकी प्रार्थना से कृष्ण का हृदय पिघल गया।

उन्होंने नृत्य करना बंद किया और बोले, "क्या तुम लोग अभी ही यह झील छोड़ सकोगे? अगर तुम ऐसा करोगे, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि गरुड़ तुम्हें कोई क्षति नहीं पहुँचाएगा।"

फिर कृष्ण कूदकर झील के किनारे आ गए। इसी बीच उनके दोनों साथी जो बेहोश थे, होश में आ गए।

सर्प का पूरा परिवार कृतज्ञता से चुपचाप झील छोड़कर सदा के लिए चला गया। जोर से बहती हुई हवा वहाँ के वातावरण में मौजूद सारा विष उड़ा ले गई। भारी वर्षा और नदी की बाढ़ से उस झील का सारा विषैला जल शुद्ध हो गया।

एक बार पुनः वह स्थान सुखद और सुंदर हो गया।


nbt.india

11

उँगली पर पर्वत

कृष्ण ने देखा कि उनके पालक पिता नंद, किसी त्योहार की व्यवस्था में जुटे हुए हैं। मैदान से बड़े-बड़े पत्थर और झाड़ियाँ हटाकर उसे साफ किया जा रहा था। एक मंच बनाया गया था, जिस पर चंदन की लकड़ी के छोटे-बड़े टुकड़ों का ढेर रखा हुआ था। नंद ज्योतिषियों से उस त्योहार के रीति-रिवाजों को आरंभ करने के लिए शुभ मुहूर्त के बारे में विमर्श कर रहे थे। उन्होंने अलग-अलग लोगों को अलग-अलग काम दे रखे थे।

"आप कौन-सा आयोजन कराने वाले हैं, पिताजी?" कृष्ण ने नंद से पूछा।

"अब भगवान इंद्र की पूजा करने का समय आ गया है। हम उनके सम्मान में यज्ञ करेंगे," नंद ने उत्तर दिया।

"इंद्र कौन हैं?"

"वे देवता हैं, बल्कि देवताओं के राजा हैं। वर्षा, बिजली का चमकना सब उन्हीं के आदेश से होता है।"

"वर्षा कराने और बिजली चमकाने की शक्ति उन्हें किसने दी है?" कृष्ण ने पूछा।

"निश्चय ही, परमेश्वर ने!" नंद ने उत्तर दिया।

"तो आप इंद्र की पूजा करने के स्थान पर परमेश्वर की पूजा क्यों नहीं करते?"

नंद सात वर्ष के बालक से ऐसे प्रश्न की उम्मीद नहीं कर रहे थे। कुछ देर सोचकर उन्होंने कहा, "यह हमारी परंपरा है!"

"पिताजी, अब समय आ गया इस परंपरा को समाप्त करने का अथवा इसे सुधारने का। सभी देवी-देवता, परमपिता परमेश्वर की शक्तियों का ही प्रतिनिधित्व

करते हैं। परंतु जिनके जीवन में छोटे उद्देश्य होते हैं, वे इन देवी-देवताओं को संतुष्ट करने में लगे रहते हैं। हमारा भाग्य हमारे विचारों और कर्मों से बनता है। क्या देवता हमारा भाग्य बदल सकते हैं? कभी नहीं। केवल परमपिता परमेश्वर ही हमें सद्मार्ग दिखा सकते हैं। हमें उनसे प्रार्थना करनी चाहिए और उनके निकट जाना चाहिए। मेरे अनुसार, जैसे आपने पुराना गाँव छोड़ दिया है, वैसे ही यह पुरानी परंपरा भी छोड़ दीजिए!" मुखिया नंद के साथ गाँव के अन्य प्रतिष्ठित लोग भी खड़े थे। वे बहुत चिंतित दिखे। वे जानते थे कि कृष्ण सत्य कह रहे थे, परंतु इतनी पुरानी परंपरा को तोड़ना आसान नहीं था।

लोग अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं के अनुसार अलग-अलग देवी-देवता को पूजते थे। देवताओं के पास उनकी आशाओं को पूरा करने की शक्ति भी थी। वृंदावन की प्रजा बड़ी ही पुण्य आत्मा थी। परमपिता परमेश्वर की कृपा उन पर बनी रहे, यही उनकी एकमात्र अभिलाषा थी। कृष्ण यह जानते थे कि उन्होंने जो भी कहा, इन पुण्य आत्माओं की यही सबसे बड़ी इच्छा थी। फिर भी, इतनी पुरानी परंपरा को तोड़ने के लिए इन आमजनों का साहस जुटा पाना कठिन था। अतः इस कार्य के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करना आवश्यक था ताकि ये लोग जीवन में प्रगति कर सकें।

"क्या आप इस परंपरा को तोड़ने से डर रहे हैं?" कृष्ण ने उनसे उत्तर माँगा।

नंद और अन्य व्यक्ति चुप रहे।

"यदि आप परमेश्वर के भक्त हैं, तो किसी भी अन्य शक्ति से क्यों डरते हैं?"

"सत्य है। हमें किसी भी प्रकार की शक्ति से नहीं डरना चाहिए। परंतु हमारी प्रजा कभी-न-कभी तो इस त्योहार को मनाना चाहेगी।" प्रतिष्ठित जनों में एक ने कहा।

"तो हम यही त्योहार गोवर्धन पर्वत के सम्मान में क्यों नहीं मनाते, जो कि एक पहरेदार की भाँति हमारी सुरक्षा में खड़ा रहता है? ईश्वर हर जगह है—सारी प्रकृति में है। आप किसी भी वस्तु में ईश्वर की उपस्थिति मानकर उसकी पूजा कर सकते हैं," कृष्ण बोले, "और गोवर्धन तो हमारा अत्यंत शांत और महान मित्र है!"

यह एक नया विचार था। अब क्या था, कृष्ण के शब्दों ने सब पर ऐसा प्रभाव डाला कि सब सम्मोहित हो गए।

यज्ञ की वेदी गोवर्धन पर्वत के नीचे बनाई गई। शुभ मुहूर्त वाले दिन, गोवर्धन की प्रशंसा में गीत गाए गए। फल-फूल चढ़ाए गए। सभी लोग बहुत उत्साहित थे। पर्वत स्वयं भी बहुत चमकीला आकर्षक और प्रसन्न दिखाई दे रहा था।

परंतु बादलों के ऊपर, इंद्र की भौंहें तन गईं थी। पहले तो उसे आश्चर्य हुआ, बाद में बहुत क्रोध आया। वे व्यक्ति जो अपने पूर्वजों के समान वर्षों से उसकी पूजा करते चले आ रहे थे, अचानक ही उसकी उपेक्षा कैसे कर सकते थे? इस परंपरा को तोड़ने के लिए उन्हें किसने प्रेरित किया?

उन्हें सबक सिखाना ही होगा, क्रोध से भभक रहे इंद्र ने निश्चय किया।

उन्होंने 39 अलग-अलग प्रकार के पवनों को बुलावा भेजा और वृंदावन में भंयकर तूफान लाने का आदेश दिया। उन्होंने बहुत दूर-दूर से बादलों को बुलाया और युद्ध के लिए तैयार किया। उन्होंने बिजली को अपने हाथों में पकड़ा और नीचे आनंदपूर्ण घाटी की ओर बड़े ही तिरस्कार से देखा।

युद्ध का प्रारंभ आँधी-तूफान से हुआ, जिससे यज्ञ की अग्नि काँपने लगी। पवनें तीव्र और तीव्र होती जा रही थीं। काले और भयावह आसमान को देखकर पुरोहित ने मंत्र पढ़ने बंद कर दिए और लोगों ने ढोल बजाना-गीत गाना बंद कर दिया। बड़े-बड़े बादल नीचे भीड़ की तरफ तीव्रता से बढ़ने लगे।

वायु की गति भंयकर तीव्र होती जा रही थी और वह सभी दिशाओं से दवाब बना रही थी। बवंडर ने यज्ञ की अग्नि को बुझा दिया। यज्ञ की रीति के लिए जितनी भी सामग्री जुटाई गई थी, वह उस बवंडर के साथ ऊपर हवा में उड़ती हुई फिर नीचे गिरकर बिखर गई।

बवंडर के बाद बादलों ने वर्षा शुरू कर दी। जल्दी ही मूसलाधार वर्षा होने लगी। बिजली की तीव्र चमक और बादलों की तेज गड़गड़ाहट ने जैसे लोगों को अंधा और बहरा कर दिया था।

लोगों की सारी भीड़ कृष्ण के चारों ओर इकट्ठी हो गई। जो लोग घरों में थे, वे भी बाहर आकर दौड़ते हुए भीड़ के साथ हो गए। वे सभी अपनी सुरक्षा हेतु निहार रहे थे। वे निश्यच ही, इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे, उनका नन्हा और प्रिय कृष्ण प्रकृति के इस भयंकर प्रकोप से उनकी सुरक्षा कैसे करेगा।



परंतु उनका भरोसा गलत सिद्ध नहीं हुआ। कृष्ण तो चमत्कार करने को तैयार ही थे, एक अकल्पनीय कार्य– अतुलनीय वीरता का प्रदर्शन करते हुए उन्होंने विशाल गोवर्धन पर्वत को उठाकर अपनी उँगली पर थाम लिया।

"आप सब पहाड़ी के नीचे आ जाइए और बिल्कुल भी मत घबराइए!" उन्होंने कहा। लोगों के हृदय से भय दूर हो गया। वे पर्वत के नीचे आराम से, प्रार्थना करते हुए चले गए। उन्होंने वहाँ सात दिन और सात रातें बिताईं, परंतु उन्हें इसका आभास भी नहीं हुआ। पहाड़ी के ऊपर क्या घटित हो रहा है, इससे अनभिज्ञ, वे सब परम आनंद में थे।

इंद्र ने भयंकर विद्युत आघातों से पहाड़ी पर बहुत से वार के प्रयास किए ताकि पहाड़ी नष्ट हो जाए और उसके नीचे के लोग वहीं समाप्त हो जाएँ। अंत में कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र का आह्वान किया, जो कि अत्यधिक ऊर्जा से युक्त चक्र की भाँति गतिशील था। वह शक्तिशाली अस्त्र अपनी तीव्रतम गति से घूमता हुआ पहाड़ी के ऊपर जाकर इंद्र के वज्र और अन्य देवताओं के अस्त्रों का इतनी तीव्रता से विनाश करने लगा कि कुछ तो अपने स्वामी पर आक्रमण करने उलटा लौट पड़े।

इंद्र भौचक्का रह गए। उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी थी, परंतु लोगों को झुका पाने में असफल रहे।

अपनी पराजय के बाद उन्होंने कुछ क्षण ध्यान किया। चूँकि वे देवता थे, अतः उन्हें ध्यान करने से पता चला कि यह छोटा बालक कौन था जिसने इंद्र के प्रकोप से लोगों की रक्षा की। अपनी अधीरता व क्रोधवश किए गए कार्यों के लिए उन्होंने पछताते हुए भगवान विष्णु से क्षमा याचना की, क्योंकि वे जाने चुके थे कि ये स्वयं भगवान विष्णु ही थे जिन्होंने कृष्ण के रूप में जन्म लिया था।

सुखद दिन निकला और लोग अपने रक्षक के कहने पर अपने-अपने घर की ओर लौट गए। कृष्ण और इंद्र के बीच जो कुछ हुआ, उसका उन्हें जरा भी भान नहीं था। वे तो बस इतना जानते थे कि उनके नन्हें राजकुमार, उनकी आँखों के तारे के लिए कुछ भी असंभव नहीं था।

12

कंस के खतरनाक दूत

अधिक दिन नहीं बीत पाए थे कि कृष्ण के साथी एक अद्भुत दृश्य देखकर दंग रह गए- एक विचित्र प्राणी।

वह दिखता तो घोड़े के समान था, परंतु भय का जीता-जागता स्वरूप था। उसके नेत्र भभकते अंगारे थे और मुँह से अग्नि की लपटें निकल रही थीं।

वह भले ही घोड़े के समान दिखता था, परंतु मानो दर्जनों बाघों से मिलाकर बना हुआ था। चरागाहों में शांति से घास चर रहे मवेशियों पर वह आसमान से गिरती हुई बिजली की तरह झपटा और अधिकतर को कुचलकर मारता हुआ निकल गया। ग्वाले किसी प्रकार से गिरते-पड़ते उसकी पहुँच से भागे।

"यह एक जंगली घोड़ा है, सुदूर जंगलों से आया है। हो सकता है वह अपना मार्ग भटक गया हो इसलिए पागलों-सा व्यवहार कर रहा हो। निश्चय ही, वह जल्दी ही अपना मार्ग ढूँढ़ लेगा और वापस लौट जाएगा," कुछ सयानों ने कहा।

परंतु उस पशु के वापसी के लक्षण नहीं दिखाई दे रहे थे। उसकी हिंसा बढ़ती ही जा रही थी। मैदान में खड़े लंबे-लंबे वृक्ष, जिनके नीचे मवेशी आराम करते या सोते थे, उन्हें वह इस प्रकार गिरा देता जैसे हवा के झोंके से ताश के महल गिर जाते हैं। ग्वाले अपने मवेशियों को मैदान, चरागाह में ले जाने से डरने लगे थे।

कृष्ण ने इन कष्टकारी घटनाओं के बारे में सुना, साथ ही अपने ग्वाल मित्रों की समस्याएँ भी सुनीं। "यदि हम अपने मवेशियों को चराने नहीं ले जाएँगे तो वे कैसे जीवित रहेंगे?" उन्होंने हैरानी से पूछा।

"परंतु तुम लोगों को मवेशी चरागाह में ले जाना चाहिए!" कृष्ण ने उन्हें पुनः कहा। उनके स्वर में जैसे जादू था। यह जादुई स्वर वैसा ही था, जैसा गोवर्धन पर्वत उठाने के बाद कृष्ण के स्वर में था।

जल्दी ही, सारे मवेशी गाँव की गलियों से चरागाह की ओर जाने लगे, जैसे पहाड़ी से कई धाराएँ उतरती हुई मिल रहीं हों और एकसाथ मैदान में बह रही हों।

ग्वाले उन्हें हाँक रहे थे, सदा की तरह सीटी बजाते और आवाज लगाते हुए। परंतु उनकी दृष्टि चरागाह से लगे हुए भयावह जंगल की ओर थी। निश्चय ही, वे डरे नहीं थे, उनकी दृष्टि यह छल निर्मित कर रही थी कि कृष्ण उनके बीच ही हैं।

अचानक ही दूर जंगल से हरे रंग की धुँधली-सी आकृति दिखाई दी, और फिर अचानक बहुत सारी धूल उड़ती हुई दिखाई दी।

"वो आ रहा है!" ग्वाल-बाल जोर से चीखे। मवेशी जो इस पशु की निर्दयता को पहले ही भुगत चुके थे, वे गिरते पड़ते हुए भागने लगे। उनमें से कुछ तो वापस गाँव की ओर भागने लगे।

जैसे बिजली की चमक के बाद बादलों की गड़गड़ाहट सुनाई देती है, वैसे ही वह हिंसक पशु भी धूल के बादलों के बीच से क्षण भर में दिखाई देने लगा। उसकी अजीब-सी हिनहिनाहट किसी शक्तिशाली को भी जमाकर पत्थर बना दे, परंतु वृंदावन के ग्वाल-बाल वापस नहीं लौटे। वे खड़े रहे, एक ओर अपने कृष्ण को देखते तो दूसरी ओर अपने ऊपर आने वाले संकट को। जैसे किसी चट्टान को रौंद दिया जाए वैसे ही वह पशु बालकों के झुंड की ओर झपटा। यह बात निश्चित थी कि उसने कृष्ण को ही निशाना बनाया था और उन पर ही आक्रमण किया। कृष्ण ने अपने बचाव के लिए अपना दायाँ हाथ उठाया और वह भयानक पशु उनसे टकराकर क्षणभर में रुक गया। कृष्ण के समीप खड़े बालक, डरे हुए और हक्के-बक्के खड़े ही रह गए, जब उन्होंने देखा कि उस पशु ने कृष्ण के हाथों को अपने दाँतों से जकड़ लिया है। परंतु जब कृष्ण ने अपना हाथ छुड़ाने का कोई प्रयास नहीं किया तो वह घोड़ा बेचैन हो गया। वह पीछे के पैर मैदान पर बार-बार पटक कर गड्ढा करने लगा।

क्या कृष्ण भी पत्थर के बन गए हैं? क्षणभर के लिए तो ग्वालों को कुछ समझ नहीं आया, परंतु जल्दी सारा रहस्य खुल गया। घोड़ा पीछे की ओर जा रहा था। कृष्ण का हाथ अभी भी उसके मुख के भीतर था, उसके सारे दाँत ऐसे झड़ गए, जैसे बेर के पेड़ हिला देने से ज्यादा पके बेरों का गुच्छा।

अंत में कृष्ण ने उसके मुँह से अपना हाथ निकालने से पहले उसे एक धक्का दिया और वह भयानक पशु तिनके की भाँति गिर गया- परंतु वह अब घोड़ा या भयानक पशु नहीं बचा था। पूतना की तरह वह भी मरते समय अपने असली

रूप में आ गया। सभी ग्वाले हक्के-बक्के से देखते रहे। वह भयानक पशु अपनी अंतिम साँस में भी लेटे हुए आग उगलता रहा।

वृंदावन का कोई भी व्यक्ति 'केसी' राक्षसी का नाम नहीं जानता था, जिसे कृष्ण की हत्या के लिए कंस ने भेजा था। ताजी सूचना यह थी कि कृष्ण की अद्वितीय वीरता से कंस का संदेह मजबूत हो रहा था कि यह बालक कोई और नहीं, बल्कि उसका संहारक था। किसी भी स्थिति में कंस अपने पड़ोसी राज्य में भी किसी को फलते-फूलते नहीं देख सकता था। उसे अपनी महानता का कम होना बिल्कुल पसंद नहीं था!

'केसी' की मृत्यु ने कंस को पुनः हिला दिया था। अब वह सचमुच में घबरा गया था और कृष्ण से डरने लगा था। उसकी मानसिक वेदना बढ़ती जा रही थी, क्योंकि वह अपनी घबराहट किसी को दिखा भी नहीं पा रहा था। यह निश्चय ही लज्जा का विषय होता कि महान और घमंडी कंस एक नन्हे बालक से घबरा गया!

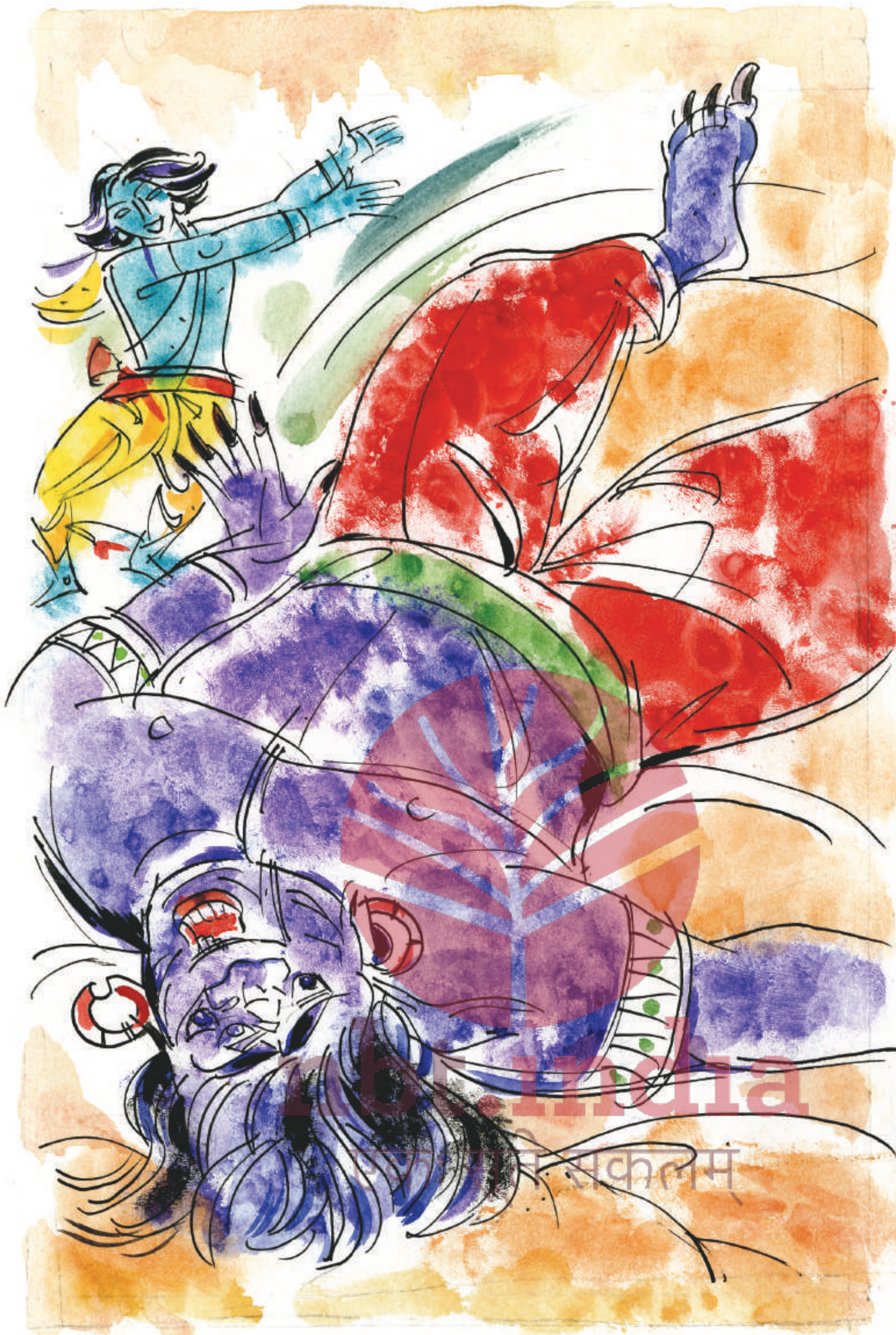
जो भी हो, अभी भी कंस के पास एक व्यक्ति था जो अपनी धूर्तता और चालाकी में बेजोड़ था। वह एक दैत्य था और कंस का वफादार सैनिक भी था। नाम था 'व्योम'। कंस ने उसे बुलाया, संक्षेप में सारी घटना सुनाई और उसे वृंदावन भेज दिया।

"उस बालक को इस संसार से विदा कर देना," उस हत्यारे गुप्तचर को कंस की यही अंतिम सलाह थी।

"आप सब मुझ पर छोड़ दीजिए, मैं इस काम को बहुत ही अच्छे से करूँगा" व्योम ने बड़े ही विश्वास से उत्तर दिया। उसने अपने वचन के अनुरूप योजना बनाई। वह एक उचित अवसर की प्रतीक्षा में था ताकि वह न केवल कृष्ण को मारे, बल्कि उनके साथ भयमुक्त खेलने वाले सभी ग्वाल-बालों की भी हत्या कर दे।

उसे एक दोपहर के बाद ऐसा अवसर मिला। ग्वाल-बाल लुका-छिपी खेलने में मग्न थे। उनमें से कुछ चोर बने थे और कुछ सैनिक बने थे। चोरों को झाड़ियों और चट्टानों के पीछे सैनिकों से बचकर छिपना था।

व्योम ने स्वयं भी एक ग्वाल-बाल जैसा रूप धर लिया और उनमें जा मिला। वह एक के बाद एक पीछा करते बालकों को पहाड़ी के पीछे ले जाता। जैसे ही वे कृष्ण की दृष्टि से दूर होते, वह उन बालकों को एक-एक करके अँधेरे गहरे गड्ढे में डाल देता, जो कि एक गुफा समान दिखता था। उसने उस गुफा का



मुँह एक शिला से बंद कर दिया। किसी भी बच्चे को इस जोखिम भरी जगह का पता न था। सब अपने उत्साह में मग्न, किसी भी बालक को यह पता न चला कि 'व्योम' उनके बीच ऐसे भेष में है जो उनमें से एक नहीं था। दैत्य एक-एक करके ग्वाल-बालों को ले जाता, और कृष्ण को ले जाने के लिए अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगा।

उस नन्हे दैत्य को यह पता न था कि कृष्ण की दृष्टि न केवल खेल में है, वह अपनी त्वचा से भी सब कुछ देख रहे हैं! उसकी इस धूर्धता को जानते हुए कृष्ण ने उस दानव को पहाड़ी के पीछे तक अपना पीछे करने दिया। जैसे ही दैत्य ने कृष्ण को उस गड्ढे में धक्का देने के लिए गुफा के मुँह से शिला हटाई, कृष्ण उस पर झपटे और भूमि पर गिरा दिया। आश्चर्यचकित दैत्य शीघ्रता से खड़ा हुआ और कृष्ण को जंगली सूअर के समान गुस्से से देखते हुए उन्हें गिरा दिया। दोनों में घमासान लड़ाई होने लगी। दैत्य चीखने लगा और उसकी चीख बढ़ती ही गई।

इसी बीच, गुफा के भीतर गिरे ग्वाल-बाल किसी प्रकार से बाहर आ गए। वे, जो अभी भी मैदान में थे, भागते हुए सबके पास आ गए। सभी ग्वाल-बाल बड़े ही अचरज से सब कुछ देख रहे थे, परंतु उनका कृष्ण जिस दैत्य से लड़ रहा था, उसका आकार बढ़ता ही जा रहा था और वह अत्यधिक भयानक होता जा रहा था। उसकी आँखों से ज्वाला निकल रही थी और वह अपने हिंसक पैंतरों से इस लड़ाई से छुटकारा पाना चाहता था।

आखिर में वह अपने पूर्ण विकराल रूप में आ गया और कृष्ण को अपने भार के नीचे दबा देने के उद्देश्य से उनके ऊपर गिर पड़ा। अगले ही क्षण उसने स्वयं को हवा में लटका हुआ पाया। जैसे कि वह एक कंबल से अधिक भारी नहीं था! आखिरी चीख के साथ वह धरती पर गिरा और वहीं मर गया।

कृष्ण अपने मित्रों के पास आए। सभी प्रसन्न हुए। ग्वाल-बाल चुप थे, परंतु वे जान गए थे कि मात्र हिंसात्मक शक्ति होने से ही विजय प्राप्त नहीं होती। इससे भी अधिक व श्रेष्ठ ताकत थी, जो उनके मित्र कृष्ण में निहित थी।

वहाँ का सन्नाटा टूट गया, जैसे ही कृष्ण बोले, "चलो अपने-अपने मवेशी इकट्ठा करके घर चलें!"

सारे ग्वाल-बालों ने भी अतिआनंद प्रदर्शित किया।

13

मथुरा से कृष्ण को बुलावा

सुबह होने को थी। यमुना नदी का शांत प्रवाह, धारा पर छोटी-छोटी लहरें, पूर्व से आ रहे हल्के प्रकाश से चमक रही थीं और कंस के महल से दिखाई दे रही थीं। महल के पीछे के बाग में पक्षी पंख फड़फड़ाने लगे थे।

कंस अपने छज्जे पर बार-बार चढ़ता और उतरता। ऐसा वह प्रकृति के अनुपम सौंदर्य व ऊषा काल का आनंद लेने के लिए नहीं कर रहा था। चिंताग्रस्त होने के कारण वह जल्दी उठ गया था, बल्कि रातभर वह सो ही नहीं पाया था।

भले ही नंद की उसके प्रति राजभक्ति थी, उसका पुत्र उस भयंकर भविष्यवाणी के अनुसार कंस का शत्रु नहीं था, फिर भी वह छोटा बालक आश्चर्य व चिंता का विषय था। क्या उसने कंस के द्वारा भेजे गए महाशक्तिशाली हत्यारों को एक के बाद एक समाप्त नहीं किया? कौन कह सकता था कि यदि इस बालक को यूँ ही छोड़ दिया गया, तो बड़ा होकर एक दिन कंस का सिंहासन हड़प ले? एक छोटा-सा बालक इतना ताकतवर कैसे हो सकता था?

इन सारे प्रश्नों में उलझा हुआ कंस जब इधर-उधर टहल रहा था कि अचानक शीतल पवन के साथ एक मधुर संगीत सुनाई दिया। पहले उसने सोचा कि उसके दरबारी संगीतकार प्रतिदिन की तरह उसे जगाने के लिए मधुर संगीत बजा रहे हैं। परंतु जल्द ही उड़ते हुए बादलों में से एक चमकदार आकृति दिखाई दी। ये तो देवर्षि नारद थे, जो कि पृथ्वी व स्वर्ग के बीच वीणा बजाते हुए और विष्णु का नाम लेते हुए भ्रमण करते रहते थे।

देवर्षि नारद से कंस बहुत प्रभावित था, भले ही उसे उनका हर समय विष्णु का गुणगान तनिक भी नहीं भाता था। "देवर्षि नारद को बहुत ज्ञान है। मैं उनसे ही उस चमत्कारी बालक कृष्ण के बारे में पूछूँगा," कंस ने सोचा।

नारद ने गाना बंद किया और कंस के पास उतर कर आए। "कैसे हैं महाराज कंस? मैं यहाँ से होकर निकल रहा था तो आपको अकेले चिंताग्रस्त देखा। आशा करता हूँ, सब कुछ ठीक होगा!" कंस के स्वागत को स्वीकार करते हुए देवर्षि ने पूछा।

कंस अपनी व्यथा में एक ठंडी साँस छोड़ते हुए बोला—

"देवर्षि, मैं विश्वास से कैसे कहूँ कि मेरे साथ सब कुछ ठीक नहीं है। आप तो उस अशुभ भविष्यवाणी के बारे में जानते ही होंगे जो कि मेरे सिर पर एक महान शाप जैसी है। मैं कैसे निश्चिंत रह सकता हूँ?"

"कंस, इस स्थिति के लिए अन्य कोई नहीं, तुम स्वयं दोषी हो। तुम्हारा शत्रु तुम्हारे साथ कुछ करे, उसके पहले तुम उसे समाप्त क्यों नहीं कर देते? तुम्हारे जैसे बुद्धिमान राजा को तो निश्चित ही अपने शत्रु का पता होना चाहिए!"

कंस ने थोड़ा सकुचाते हुए कहा, "मुझे एक शरारती बालक पर संदेह है..." वृंदावन का कृष्ण, निश्चिय ही!" नारद मुस्कराते हुए बोले।

"बिल्कुल सही, हे देवर्षि! परंतु भविष्यवाणी के अनुसार वह मेरी बहन देवकी का आठवाँ पुत्र होगा- उसकी आठवीं संतान? वैसे भी, उसकी आठवीं संतान एक कन्या थी। जब मैं उसे समाप्त करने का प्रयास कर रहा था, तब वह मेरे हाथ से छूट गई थी। आसमान में विलीन होने से पहले, उसने एक पहेली के समान घोषणा करके मुझे चेतावनी दी थी। उसने कहा था कि यहाँ मेरा अपने शत्रु को ढूँढ़ना व्यर्थ है। वह कहीं और ही पल रहा है। अब, मुझे यह समझ नहीं आ रहा कि यदि मेरे शत्रु ने देवकी से जन्म लिया है, तो वह कहीं और कैसे हो सकता है। साथ ही साथ उस बालक कृष्ण की इतनी सारी गतिविधियाँ जानकर, मेरा यह निष्कर्ष है कि वही मेरा शत्रु है!"

"तुम्हारी उलझन जानकर मुझे अचंभा नहीं हुआ। यह सारा कुछ विष्णु का रचा हुआ खेल है। अब समय आ गया है कि तुम सत्य जान लो!" नारद ऐसा बोलकर थोड़ा मौन हो गए।

निश्चय ही, अब समय आ गया था कि नारद कंस को सत्य बता देते! परंतु क्या नारद उस अत्याचारी कंस के लंबे जीवन की कामना करते थे? या फिर यह उसके जल्दी विनाश की इच्छा से कर रहे थे? कंस को ऐसे प्रश्नों की चिंता नहीं थी। वह तो देवर्षि से सत्य जानना चाहता था।



देवकी ने सचमुच बालक को ही जन्म दिया था। परंतु वसुदेव ने रात्रि में ही उस बालक को नंद के घर ले जाकर उनकी नवजात कन्या से बदल दिया। क्या तुम्हें अब समझ आया कि कृष्ण नाम का बालक कोई अन्य नहीं, बल्कि भविष्यवाणी द्वारा घोषित तुम्हारा शत्रु ही है?"

"क्या! वसुदेव इस छल के लिए सक्षम था? पर वह तो बड़ा साधारण दिखता है! मैं तत्काल ही उसे मृत्य के घाट उतारता हूँ!" कंस चीखा। अपने दाँतों को पीसते हुए, तलवार निकालकर छज्जे के नीचे उतरने लगा।

"शीघ्रता मत करो!" कंस का मार्ग रोकते हुए नारद बोले। "वसुदेव ने मात्र वही किया, जो कोई भी पिता अपने संतान की सुरक्षा के लिए करता। तुम्हें कृष्ण को मारने के बारे में विचार करना चाहिए, उसे नहीं। सोचो तो, इस स्थिति में वसुदेव की हत्या सारा खेल बिगाड़ सकती है। तुम्हें किसी को भी नहीं पता चलने देना चाहिए कि तुम अपने शत्रु को पहचान गए हो।"

कंस ने तलवार वापस म्यान में डाली और चुपचाप खड़े होकर क्षण भर के लिए विचार किया। "आप ठीक कह रहे हैं, देवर्षि, परंतु प्रश्न यह है कि यह कार्य कैसे संपन्न हो?" कंस बोला।

"कंस, अब तक तुम्हारी योजनाएँ ठीक नहीं थी। तुमने अपने हत्यारों को वृंदावन भेजा जो कि कृष्ण का क्षेत्र है और वह वहाँ ताकतवर सिद्ध होता है। तुम यह क्यों नहीं समझते कि तुम उससे अपने स्थान में मिलोगे तो बात कुछ अलग होगी?" देवर्षि ने आँखों में चमक लिए हुए कहा।

कंस का चेहरा खिल उठा। वह उत्साहित हो गया। अब नारद निश्चिंत थे कि उन्होंने अपना कार्य पूरा कर लिया। पुनः अपनी वीणा बजाते हुए और गाते हुए अंतर्धान हो गए।

कंस ने एक साथ दो कार्य किए। प्रथम, देवकी और वसुदेव को पुनः कारागार में डाल देने का आदेश दिया। द्वितीय, अपने निकटतम रिश्तेदार और नंद के मित्र 'अक्रूर' को बुलावा भेजा।

"बिना विलंब किए नंद के घर जाओ। और दोनों बालक कृष्ण व बलराम को यहाँ, मेरे पास भेजने के लिए कहो। मैंने उन्हें कभी नहीं देखा है, बल्कि उनके बारे में बहुत कुछ सुना है। नंद से कहो कि मैं इन बालकों के सम्मान में एक उत्सव आयोजित कर रहा हूँ, जिनके बारे में मैंने सुना है, वे बड़े वीर और प्रतिभावान हैं। नंद और उनकी पत्नी भी आएँ।"

अत्याचारी कंस को यह भान नहीं था कि अक्रूर, विष्णु का महान उपासक, उन कुछ लोगों में थे, जो कृष्ण का सही रूप जानते थे। अक्रूर रोमांचित हो उठे। कृष्ण से मिलने से बड़ा आनंद उनके लिए कुछ भी नहीं था।

इधर अक्रूर वृंदावन के लिए निकले, उधर मथुरा में उत्सव की तैयारियाँ प्रारंभ हो गईं।

"देवर्षि कितने बुद्धिमान और सहायक हैं! परंतु उनकी इस सहायता के बाद भी मैं अपनी मृत्यु की भविष्यवाणी को लेकर चिंतित रहूँ! मेरे शत्रु! तुम्हारा काल अब निकट है। अभी कल का जन्मा बालक तूने मुझे असीम मानसिक वेदना दी है।" कंस बड़बड़ाया और अपनी मुट्ठी से उस अदृश्य शत्रु पर प्रहार करते हुए अट्टहास करने लगा।

जिस क्षण वह भयंकर भविष्यवाणी हुई, तब से कंस कभी प्रसन्न नहीं दिखा। परंतु अब उसके मन को कुछ अच्छा लग रहा था।

उसने अपने मंत्रियों के साथ मिलकर योजना बनाई थी कि उन दोनों बालकों के आने पर वह क्या करेगा। वह इस योजना पर बड़ा प्रसन्न था। वह कोई भी अवसर नहीं छोड़ना चाहता था। एक भयानक हाथी जिसे लोगों को कुचलकर मारने के लिए प्रशिक्षित किया गया था, उसे उन बालकों का सामना करने के लिए तैयार किया गया था। यदि वे बालक इस कठिन परीक्षा से बच गए, तो उन्हें दो दैत्य योद्धाओं से युद्ध करना था। यह तो बड़ा ही अनुकूल था।

यद्यपि इसके बाद उन बालकों के बचने की कोई भी संभावना नहीं थी, परंतु फिर भी कंस ने अपने सर्वश्रेष्ठ सैन्य योद्धाओं को तैयार कर रखा था, जो कंस का एक संकेत पाते ही उस पर झपट पड़ते।

अंतिम व सबसे प्रमुख योजना, कंस ने स्वयं ही बहुत सारे अस्त्रों-शस्त्रों के साथ तैयार होने का निश्चय किया था ताकि इन दोनों युवा बालकों के अभियान का स्वयं ही अंत कर दे और कंस तक उनके पहुँचने की संभावना ही न रहे।

बहुत लंबे समय के बाद कंस इतनी जोर से हँसा कि उस महल में सोने वाले लोग झटके से उठ पड़े।

14

तानाशाह का अंत

वह दोपहर का समय था जब अक्रूर के रथ, जो कि बड़ा ही आकर्षक था, ने वृंदावन में प्रवेश किया। कंस को विश्वास था कि अनुपम रूप, सुंदर रत्नजड़ित रथ जिसे दो बहुत ही उम्दा घोड़े खींच रहे थे, कृष्ण और बलराम को बहुत लुभावना लगेगा और वे दोनों जल्द-से-जल्द अवसर पाते ही उस पर बैठना चाहेंगे।

श्रेष्ठ और प्रभावशाली अक्रूर सभी के प्रिय थे। एक बालक उनके रथ के आगे-आगे भागता हुआ गया और नंद को उनके आगमन की सूचना दी। नंद उनका स्वागत करने घर से बाहर मार्ग पर आ गए। कृष्ण और बलराम ने झुककर उन्हें प्रणाम किया, उनके लिए अक्रूर पितामह समान थे।

परंतु जल्द ही अक्रूर कृष्ण के साथ अकेले थे और उन्होंने उस बालक को साष्टांग प्रणाम किया। नेत्रों में अश्रु लिए। विष्णु के परम उपासक ने कृष्ण को बताया कि भले ही कंस ने उन्हें उत्सव के लिए बुलाया था, परंतु वह एक चाल, छल, धोखा था। उस अत्याचारी का एकमात्र उद्‍देश्य कृष्ण को समाप्त करना है।

कृष्ण मुस्कराए और उन्होंने सिर हिलाकर सहमति दी। अक्रूर जानते थे कि कृष्ण उस चुनौती का सामना करने के लिए तैयार थे। अक्रूर का हृदय आनंद से भर गया, कुछ तो कृष्ण से मिलने की खुशी में और कुछ इस बात से कि मथुरा जो अब अत्याचारी कंस से मुक्ति पाने वाली थी, उसका संदेश वाहक अक्रूर स्वयं थे।

परंतु वृंदावन की प्रजा को देखकर अक्रूर दुखी हो गए। प्रत्येक व्यक्ति उनके वृंदावन आने का उद्‍देश्य जानना चाहता था- जो कि कृष्ण और बलराम को उन सबसे दूर, मथुरा ले जाना था। वे सभी जोर-जोर से शोर करने लगे और अक्रूर का विरोध करने लगे।

"कंस के इस दरबारी को क्या अधिकार है कि वह हमें हमारे प्रिय कृष्ण के साथ से वंचित करें?" बहुत-से लोग बड़बड़ाए।

"हम मार्ग पर लेट जाएँगे। यदि उन्हें रथ ले जाना है तो हमारे ऊपर से लेकर चले जाएँ।" अन्य लोगों ने कहा। ऐसी बातें/प्रतिक्रिया निश्चित ही अक्रूर को अच्छी नहीं लग रही थीं। परंतु वह क्या कर सकते थे? कुछ लोगों से उन्होंने क्षमा याचना की, तो कुछ को प्रेमपूर्वक समझाने का प्रयास किया कि इन बालकों के लिए मथुरा जैसे बड़े नगर जाना अच्छा अनुभव होगा। परंतु जब विरोध बंद नहीं हुआ तो उन्होंने लोगों की बातें अनसुनी करने का प्रयास किया।

वृंदावन की प्रजा के अश्रुओं और सिसकियों के बीच, कृष्ण और बलराम रथ पर चढ़े। कुछ बालक तो तब तक उनके पीछे गए जब तक कि अक्रूर ने रथ की गति बढ़ाकर घाटी को पार नहीं कर लिया।

नंद और यशोदा भी कंस द्वारा आमंत्रित थे। मार्ग पर, उन्होंने कई बालकों को देखा, जो कृष्ण के साथी थे और नंद के साथ आना चाहते थे। नंद के पास उन्हें रोकने का कोई कारण नहीं था। कुछ को तो कंस के प्रयोजन का आभास हो गया था। कोई अचरज की बात नहीं थी यदि वे अपने प्रिय कृष्ण के लिए बेचैन थे।

वृंदावन से साथ आए लोगों के लिए यह बड़े आनंद का विषय था कि कृष्ण और बलराम मथुरा नगरी के बाहर, एक बगीचे में शिविर लगाकर रुके थे। अक्रूर ने कंस को जाकर सूचित किया कि उसके युवा अतिथि आ चुके हैं, और वे अपने आदरणीय मामा श्री, महाराज कंस के दर्शन के लिए अगली सुबह आना चाहते है। इस सुंदर नगरी में पड़ाव डालकर रुकना उनके लिए एक शुभ संकेत था।

"बालकों को यमुना नदी पर सूर्योदय के दृश्य की एक झलक ले लेने दो अंतिम बार!" कंस ने बड़े आनंद में स्वयं से कहा। ये बालक अगले दिन इस धरती पर न दिखाई दें, इस बात को निश्चित करने के लिए उसने सारी व्यवस्थाओं का पुनः निरीक्षण किया। सब कुछ क्रम व्यवस्थित था। उसने संतोष की साँस ली।

वह सुबह बड़ी ही चमकीली थी जब कृष्ण और बलराम कंस के भव्य महल की ओर चले, पीछे-पीछे उनके पालक माता-पिता, मित्र और सखा थे। नगर के बीच से जब वे दोनों सभी लोगों के साथ जा रहे थे तब मथुरावासी उन आकर्षक

बालकों को देखकर मथुरा नगर की प्रजा इन आकर्षक बालकों को देखकर मोहित हो गई, जब वे मार्ग से जुलूस के साथ जा रहे थे।

महल के भव्य द्वार पर पहुँचते ही कृष्ण और बलराम ने देखा कि उनका मार्ग एक विशाल हाथी ने रोक लिया, “कृपया, हमें जानें दे। हम महाराज के भांजे हैं और यहाँ उनके द्वारा आमंत्रित हैं,” कृष्ण ने बड़ी विनम्रता से हाथी पर सवार दैत्य महावत से कहा।

अगले ही क्षण महावत ने हाथी को उन दोनों युवा आगंतुकों को कुचल देने के लिए प्रेरित किया। सारी भीड़ भय के मारे कृष्ण के पीछे आ गई परंतु कृष्ण वहाँ नहीं थे। अचंभित महावत ने हाथी को सभी दिशाओं में घुमाते हुए अपने लक्ष्य को खोजने का प्रयास किया।

परंतु अचानक ही हाथी ऊपर को उठने लगा। हाँ, बालक कृष्ण हाथी के नीचे थे। उन्होंने हाथी को झटके से ऊपर उठाया और अपने महावत को कुचलकर उसे मौत के घाट उतारते हुए हाथी गिर गया। कृष्ण खिलखिलाते हुए ऐसे आए, जैसे लुका-छिपी का खेल खेलकर आ रहे हों।

बालकों के पीछे खड़ी मथुरा और वृंदावन की सारी भीड़ में से तालियों की गड़गड़ाहट गूँज उठी। कृष्ण ने हाथी के दाँतों को तोड़ा/उखाड़ा और एक स्वयं तथा दूसरा बलराम को दिया।

अब वे राजभवन के उस विशाल, विस्तृत आँगन में आए, जहाँ उत्सव होने जा रहा था। उस आँगन, मैदान के एक किनारे ऊँचा मंच सजा हुआ था। उसी मंच पर कंस अपने घनिष्ठ मित्रों, अंगरक्षकों और मंत्रियों के साथ बैठा हुआ था। दोनों भाइयों ने जैसे ही कंस को देखा, वे रुक गए और झुककर उसे प्रणाम किया। परंतु कंस इतना उत्साहित था कि उनकी विनम्रता को समझ ही नहीं पाया। उसने अपने दो दैत्य पहलवानों ‘चाणूर’ और ‘मुष्टिक’ को हाथ हिलाकर आने का संकेत दिया।

दोनों पहलवान चलते-फिरते पर्वत के समान और दोनों भाइयों के सामने आकर खड़े हो गए। “ऐसा लगता है जैसे तुम दोनों बड़े वीर और शक्तिशाली हो!” उन दैत्यों ने दोनों बालकों पर उपहास करते हुए उन्हें ध्यान से देखा। “तुम अपने बल का प्रयोग हम पर क्यों नहीं करते— केवल आनंद के लिए?”

“तुम्हें हमारे बारे में गलत जानकारी है। हम मात्र ग्वाले हैं और हमें पहलवानी



का ज्ञान खेल/कबड्डी के ज्ञान से अधिक नहीं है!" कृष्ण ने समझाया।

परंतु बड़ी-बड़ी लाल आँखों वाले और चट्टान के समान माँसपेशियों वाले दैत्य उनकी विनम्रता को समझने के इच्छुक नहीं थे। 'चाणूर' कृष्ण पर और मुष्टिक बलराम पर झपटा।

धूल का गुबार उड़ने लगा और कुछ देर के लिए कुछ भी दिखाई नहीं दिया। कंस के साथ मंच पर बैठे हुए लोगों को जरा-सी भी शंका नहीं थी कि दोनों दैत्यों ने उन बालकों को पूरी तरह से मसल दिया होगा जैसे कि आकाश से गिरने वाली धूल एक नन्हे पौधे को नष्ट कर देती है।

वायुमंडल में दो चीखें गूँज उठीं। धूल बैठ गई। लोगों ने देखा कि शक्तिशाली पहलवान निष्प्राण पड़े हुए हैं। कृष्ण और उनके भाई अपनी भौंहों और माथे से धूल व पसीना पोंछ रहे हैं।

एक क्षण को हर तरफ सन्नाटा पसर गया, अगले क्षण भीड़ पुनः आनंद व उत्साह में तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठी। परंतु कंस की दहाड़ से वह ध्वनि बंद हो गई। "हत्या कर दोनों बालकों और उनके माता-पिता का सिर अभी धड़ से अलग कर दो।"

कृष्ण जल्दी ही सीढ़ियों से ऊपर चढ़े और कंस के सिंहासन के पास पहुँच गए। सभी ने उस अत्याचारी को अंतिम बार तभी जीवित देखा, जब उसने अपनी भयंकर तलवार उठाई। अगले ही क्षण वह उस ऊँचे मंच से नीचे लुढ़क कर गिर गया। धड़ाम की गूँज के साथ वह मैदान पर गिरा और कृष्ण उसकी छाती पर सवार थे।

उस अद्भुत दृश्य को देखकर कई लोग मूर्च्छित हो गए। बाकी लोग मूक से देखते रहे। जल्दी ही कंस के मित्र समझ गए कि कुछ अविश्वसनीय घटना घट गई है। वे भय के मारे गिरते-पड़ते भागने लगे। कंस की पत्नियाँ विलाप करने लगीं। कृष्ण उनके पास ऊपर आकर बोले, "मामी! यह मेरे भाग्य में नहीं था कि मैं अपने मामा श्री के प्रेम का आनंद ले पाता। आपने देखा कि मेरे आने पर यहाँ क्या-क्या हुआ। इन सभी बातों को अनदेखा कर मैं श्रद्धेय महाराज से मिलने गया। परंतु उन्होंने मेरी हत्या के लिए अपनी तलवार निकाल ली और इसी घटनाक्रम में उनका संतुलन बिगड़ गया। उन्हें गिरने से बचाते हुए, मैं भी उनके साथ गिर गया, परंतु भाग्यवश मैं बच गया। भाग्य का लिखा कौन बदल

सकता है?”

वह बात जो कृष्ण किसी के आगे उजागर नहीं कर सके, वह यह थी कि जब उन्होंने कंस के पास आकर उसकी आँखों में देखा, उसके भीतर का दानव यह समझ चुका था कि यही उसका शत्रु है। एक असीम शांति और चैन से वह अभिभूत हो गया। अब तक जो उसने शापित जीवन जिया, उससे उसकी आत्मा एक झटके में ही मुक्त हो गई।

मथुरा की सारी प्रजा उस अत्याचारी की मुत्यु पर आनंद से झूमने लगी। यदि कंस ने उन बालकों को झूठे उत्सव का बहाना बनाकर बुलाया था, तो अब मथुरा में सचमुच भव्य उत्सव का वातावरण था।

कंस की मृत्यु के बाद कृष्ण सबसे पहले उस कारागार में गए, जहाँ उनके माता-पिता देवकी और वसुदेव बंदी थे। हर्ष व उल्लास की ध्वनि के मध्य उन्होंने उस श्रेष्ठ दंपती को मुक्त कराया। बाद में कारावास से कंस के पिता उग्रसेन को मुक्त कराया, जिनका सिंहासन कंस ने हड़प लिया था।

राज्य को उनका श्रेष्ठ राजा उग्रसेन पुनः मिल गया था। प्रजा ने आकर अपने असली राजा उग्रसेन का खुशी के आँसुओं से स्वागत किया।



15

गुरु के लिए उपहार

मथुरा में पुनः शांति स्थापित हो गई। वृद्ध तथा योग्य एवं राज-काज में निपुण दयालु राजा उग्रसेन ने सिंहासन वापस पाने के बाद यह घोषणा कराई कि अब से राज्य में दंड मात्र न्याय के लिए दिया जाएगा, आतंक के लिए नहीं।

लोग इकट्ठे हो कर उस अविस्मरणीय दिन की चर्चा करने से थकते नहीं थे। कोई कैसे भूल सकता था वह अचंभित दृश्य— जब दो कोमल से बालकों का सामना अचानक एक उग्र हाथी से हो गया और उसे उन दोनों को कुचल देने के लिए प्रेरित किया गया? कोई कैसे भूल सकता था इन बालकों को परास्त कर देने के लिए उन दो दैत्य पहलवानों की चुनौती अथवा जिसके लिए स्वयं कंस ने उन निशस्त्र बालकों की हत्या का आदेश दे दिया? अंत में सबसे मुख्य बात, कोई यह कैसे भूल सकता था कि शक्तिशाली व अत्याचारी राजा बालक कृष्ण के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गए और कृष्ण उनकी छाती पर चढ़े थे?

जब हर कोई उन बालकों के वीरतापूर्ण कार्यों से चकित व प्रसन्न था, कृष्ण और बलराम जैसे सारी घटना भूल ही चुके थे। उन्हें अपने मित्रों के साथ वृंदावन में खेलने में अधिक रुचि थी अपेक्षाकृत ऐसी घटना के, जिसमें उन्हें न चाहते हुए भी करनी पड़ी थी।

परंतु वे जानते थे कि खेतों में उछल-कूद करना व लुका-छिपी खेलना सदा नहीं हो सकता था। अब उनका शिक्षा प्राप्त करने का समय आ गया था।

उनके पिता, वसुदेव ने अपने कुलगुरु 'गर्ग ऋषि' से इस पर सलाह ली। "अवंति राज्य में, क्षिप्रा नदी के तट पर, एक महान संत रहते हैं, वे धर्मग्रंथों में बहुत ही प्रवीण हैं। कला से संबंधित, शासन व्यवस्था, राजनीति शास्त्र तथा अन्य विषयों में वे बहुत अनुभवी हैं। कृष्ण और बलराम को शिक्षा प्रदान करने में वे उचित गुरु होंगे," गर्ग ने सलाह दी।

एक शुभ दिन और सही मुहूर्त पर दोनों बालकों को जीवन के नए पक्ष के प्रारंभ के लिए ऋषि संदीपनी के आश्रम भेजा गया।

ऋषि का आश्रम एक अत्यंत सुंदर स्थान में सदाहरित वन के बगल में स्थित था। छात्र छोटी-छोटी कुटिया में रहते थे। कार्य श्रम व शिक्षा एक साथ चलता था। छात्र स्वयं खेती करते, जलाऊ लकड़ियाँ, फूल और फल एकत्रित करते और आश्रम को सुचारु रूप से चलाने के लिए विविध कार्यों को करते। गुरु छात्र के स्वभाव व क्षमता के अनुरूप उन्हें शिक्षा देते। वे इस बात की चिंता न करते कि छात्र धनवान का पुत्र है या निर्धन का।

कृष्ण और बलराम ने अपनी शिक्षा बड़ी ही गहनता, तन्मयता, एकाग्रता से ग्रहण की। वर्ष बीतते गए, गुरु को यह संतोष था कि उन दोनों ने अपनी शिक्षा पूर्ण रूप से प्राप्त कर ली है।

"मेरे बच्चो, अब तुम लोग अपने घर जा सकते हो और अपने जीवन के उत्तरदायित्वों को पूरा कर सकते हो," ऋषि संदीपनी ने कृष्ण और बलराम से कहा।

"गुरुजी, हमें यह पूर्ण विश्वास है कि आपने जो शिक्षा दी है, हम उसमें आपको कभी निराश नहीं करेंगे। परंतु क्या आप हमसे गुरुदक्षिणा नहीं लेंगे, इसलिए नहीं कि आपकी कोई इच्छा है, परंतु हमारी संतुष्टि के लिए?" दोनों भाइयों ने गुरु से विनती की।

"मेरे बच्चो, मैं क्यों कुछ भी गुरुदक्षिणा लूँ तुमसे। मुझे और मेरी पत्नी को किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। जीवन में एकमात्र इच्छा है, जिसे हम चाहते हैं, वह है– मेरा एकमात्र पुत्र बारह वर्ष पहले प्रभास से समुद्र में गायब हो गया। उसे पाने की इच्छा है!" गुरु ने उत्कंठा से कहा।

"आशीर्वाद दीजिए, गुरुजी ताकि हम अपने भाई को आपके पास वापस ला सकें!"

दोनों छात्रों ने ऋषि को झुककर प्रणाम किया और ऋषि उनकी दृढ़ता, निश्चय, दृढ़संकल्प और साहस को देखकर चकित थे।

गुरु आगे उनसे कुछ कहते, उसके पहले ही दोनों भाई अपने ध्येय के लिए निकल पड़े थे।

प्रभास के एकांत समुद्री तट पर जलदेवता वरुण ने कृष्ण का अभिवादन किया।


nbt.india

"ऋषि संदीपनी के पुत्र के साथ आपने क्या किया?" कृष्ण ने जलदेवता से पूछा।

"मैंने उसके साथ कुछ नहीं किया है, बल्कि उसका अपहरणकर्ता मेरे क्षेत्र में ही रहता है- गहरे समुद्र के भीतर। वह समुद्र दैत्य पाञ्चजन्य है, जिसे अपनी ताकत पर बहुत घमंड है," वरुण देवता ने बताया।

"अभियान का अंत होकर रहेगा," कृष्ण ने कहा। उन्होंने बलराम से तट पर प्रतीक्षा करने को कहा और स्वयं लहरों में चले गए।

विशाल समुद्र के भीतर जल की दुनिया में असंख्य भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव थे। पाञ्चजन्य दैत्य ने पृथ्वी पर उत्पात मचाकर रखा था और अब समुद्र में आकर छिपा हुआ था। वह शंख का रूप धर कर समुद्र के भीतर चट्टानों के मध्य में छिपा हुआ था।

जैसे ही कृष्ण ने उसे देखा, उसे संकट का आभास हो गया। फिसलते हुए एक से दूसरी चट्टानों में छिपने लगा, परंतु उसके सारे प्रयास व्यर्थ थे। जब वह समझ गया कि अब वह और छिप नहीं सकता, तब अपने विशाल रूप में आकर उसने कृष्ण पर आक्रमण कर दिया।

परंतु कंस के द्वारा भेजे गए दैत्यों से अधिक ताकतवर नहीं था वह! कृष्ण के एक प्रहार ने उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। एक सामान्य शंख के आकार का करके कृष्ण ने उसे अपने हाथ में पकड़ लिया। कृष्ण ने उसे जोर से हिलाया तो उसका कवच नीचे गिर गया परंतु ऋषि के पुत्र का कोई भी संकेत नहीं मिला। दैत्य ने निश्चय ही उसकी हत्या कर दी होगी।

शंख को अपने हाथों में लेकर कृष्ण यमराज के निवास पर पहुँचे। उन्होंने शंखनाद करके ऋषि पुत्र को बुलाया। भीतर अँधेरों से उसकी आत्मा निकली। पंच तत्वों को पुनः एकत्रित कर उसके देह का पुनर्निर्माण किया गया। अब वहाँ वही बालक खड़ा था जो बारह वर्ष पहले इस संसार को छोड़ चुका था।

कृष्ण और बलराम एक असंभावित उपहार लेकर गुरु के आश्रम पहुँचे। ऋषि को अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ। ऋषि और उनकी पत्नी असीम आनंद में थे। दोनों ने कृष्ण और बलराम को हृदय की गहराइयों से आशीष दिया।

कृष्ण ने उस शंख को त्यागा नहीं, जिसमें से दानव को बाहर निकाल कर परास्त किया था। उसी दानव के नाम के कारण पाञ्चजन्य नाम से वह शंख प्रसिद्ध हुआ। जब-जब आवश्यक होता, कृष्ण पाञ्चजन्य से शंखनाद करते।

16

कालयवन की दुर्गति

कृष्ण और बलराम मथुरा लौटे, परंतु केवल नई समस्याओं का सामना करने के लिए। कंस अब नहीं था, परंतु उसका ससुर और मगध का अत्याचारी शासक जरासंध, उसकी मृत्यु का प्रतिशोध लेने की शपथ लिए हुआ था। उसे इस बात से कोई सरोकार नहीं था कि कंस की मृत्यु का कारण स्वयं उसकी धूर्तता थी।

जरासंध का जन्म आश्चर्यजनक घटनाओं की कड़ी थी। उसके पिता वृहद्रथ को एक ऋषि से चमत्कारी फल मिला। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उनकी रानी इस फल का सेवन करके एक महान बालक को जन्म देगी।

परंतु वृहद्रथ की दो रानियाँ थीं और उसने दोनों को वह फल देने का वचन दिया था। उसने वह फल आधा-आधा काटकर, दोनों के बीच बाँट दिया। परिणाम बड़ा विचित्र था— प्रत्येक रानी ने लंबवत कटे हुए आधे-आधे शिशु को जन्म दिया। क्रोध में तमतमाए राजा ने शिशु के दोनों आधे भागों को श्मशान घाट में फेंक देने का आदेश दिया और ऐसा ही किया गया। कुछ ही देर बाद एक राक्षसी जरा ने उन टुकड़ों को देखा और उन्हें जोड़ दिया। और वह पूर्ण शिशु रोने लगा।

उसके रोने का स्वर लोगों को सुनाई दिया। राजा को सूचना मिलते ही वह भागता हुआ उस स्थान पर आया। राक्षसी जरा ने वह शिशु राजा को सौंप दिया। तब से उस शिशु का नाम पड़ गया 'जरासंध' अर्थात जरा द्वारा संधि करके जोड़ा गया।

इसी बीच, जरासंध एक धूर्त योद्धा के रूप में कुख्यात हुआ। उसे किसी से भय नहीं था क्योंकि बहुत कम लोग जानते थे कि उसे मारने का एकमात्र तरीका है उसके बीच से दो भाग करना।

जब कृष्ण ने जाना कि वह मथुरा पर आक्रमण की तैयारी कर रहा है तो वे समझ गए कि अब मथुरा की प्रजा को भयंकर प्रताड़ना भुगतनी होगी। वे अपनी

प्रजा को कष्ट में नहीं देखना चाहते थे। बहुत दूर समुद्र के तट पर, एक निर्जन स्थान में उन्होंने मथुरा की प्रजा को बसाया ताकि वे सुरक्षित रहें। यह स्थापित की गई कि नई नगरी बाद में 'द्वारका' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

और जैसा कि कृष्ण को पूर्वानुमान हो गया था, जरासंध ने मथुरा पर बार-बार आक्रमण किए। उसे हर बार छोड़ दिया गया, परंतु इसका उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने अपने मित्र कालयवन को कृष्ण के विरुद्ध भड़काया। बड़े-बड़े राजाओं और योद्धाओं पर कालयवन का आतंक फैला हुआ था।

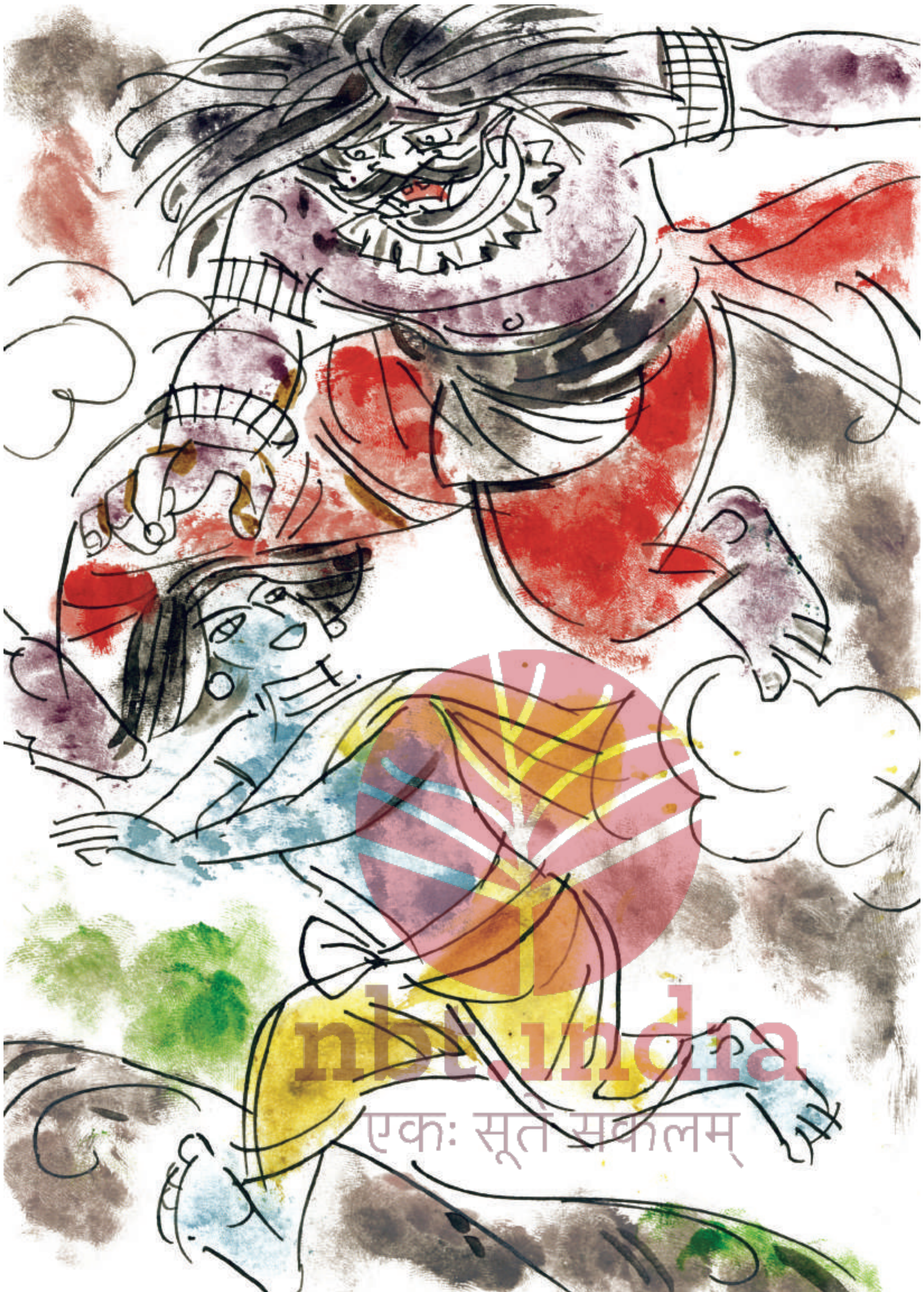
जब तक कालयवन मथुरा पहुँचा, सारे लोग पुराने राज्य से नई नगरी द्वारका जा चुके थे। कृष्ण अकेले ही वहाँ उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

विकराल आकार का वह योद्धा, जिसके एक हाथ में गदा और दूसरे हाथ में भयंकर तलवार थी, उस निर्जन नगर में आ चुका था। जल्द ही उसकी दृष्टि कृष्ण पर पड़ी, उसकी माँसपेशियाँ तन गई और आँखें लाल हो गईं। परंतु कृष्ण मुड़े और दूसरी दिशा में जाने लगे। "क्या वह मुझसे डर गया है?" कालयवन को अचरज हुआ। उसने कृष्ण का पीछा किया। कृष्ण एक बार पीछे देखते फिर सामने देखते और तेजी से बढ़ते ही जा रहे थे। कालयवन ने भी अपने पग तेजी से बढ़ाए। धीरे-धीरे दोनों दौड़ने लगे। बीच-बीच में कृष्ण कालयवन की पकड़ में आते-आते हर बार चकमा दे देते।

कृष्ण के सामने पहाड़ियों की शृंखला आ गई और लगा कि यह दौड़ अब समाप्त हो जाएगी। कृष्ण कालयवन की तुलना में बड़े कोमल दिख रहे थे। उसे यह विश्वास था कि कृष्ण के लिए वह पहाड़ी पार करना आसान नहीं होगा। उनकी गति मंद पड़ जाएगी और यह उनका पीछा करने वाले के लिए प्रतिशोध लेने में सहायक होगा। कालयवन इस विचार से बड़ा प्रसन्न था।

परंतु पहाड़ी के नीचे पहुँचकर कालयवन एक क्षण के लिए उलझन में आ गया। कृष्ण कहाँ अदृश्य हो गए थे? वह बार-बार अपने दाएँ-बाएँ देखता, क्रोध में आकर उसने अपने आगे स्थित एक चट्टान को उखाड़ फेंका पर उसका शत्रु कहाँ था?

थोड़ी देर ढूँढ़ने के बाद उसे एक सुरंग दिखी। "इसमें छिपकर बड़ी चतुराई का काम किया है।" जोर से हँसते हुए उसने सुरंग में प्रवेश किया। अब उसे पूर्ण विश्वास था कि कृष्ण को वह ढूँढ़ ही लेगा।



सुरंग के भीतर जाकर एक गुफा में खुलती थी। जहाँ एक छोटा-सा घास का मैदान था। मंद प्रकाश में कालयवन ने देखा कि कृष्ण धरती पर सूखी घास के ऊपर लेटे हुए थे।

"कृष्ण!" कालयवन हाँफते हुए चिल्लाया।

उसकी चीख से गुफा की दीवारें हिल गईं उसके स्वर की कई प्रतिध्वनियाँ एक साथ गूँज उठीं। परंतु उस सोई हुई आकृति की बंद पलकें तक नहीं हिलीं।

कालयवन गरजते हुए हँसा। उसने अट्टाहास किया, "निद्रा का झूठा बहाना, हुँह? हा हा! क्या तुम इतनी सहजता से मुझे धोखा दे सकते हो? यह सत्य है, कि मुझ जैसे योद्धा को, एक सोते हुए शत्रु पर वार नहीं करना चाहिए, परंतु मैं इतना भी मूर्ख नहीं कि निद्रा का बहाना किए हुए शत्रु को छोड़ दूँ, तुम्हें सदा के लिए स्थायी निद्रा में पहुँचाने के लिए झूठी निद्रा से जगा तो लूँ।" उठाते हुए चिल्ला कर सोते हुए व्यक्ति की छाती पर एक लात मारी। वह इस प्रतीक्षा में था कि क्या उसके प्रहार से वह व्यक्ति मर गया या अभी भी उसमें उठकर बैठने की थोड़ी ताकत बाकी थी।

परंतु यह देखने का कालयवन को समय ही नहीं मिला! वह व्यक्ति उसको घूरते हुए उठकर बैठा। उसकी क्रोधित आँखों से ज्वाला निकली और कालयवन को वहीं भस्म कर दिया।

वह व्यक्ति मुचुकुंद था, एक साहसी व श्रेष्ठ नीतिवान राजा था। उसने एक बार पृथ्वी पर उत्पात व हिंसा फैलाने वाले दैत्यों के बहुत से दलों को मौत के घाट उतारा था। जब देवताओं ने उससे वरदान माँगने को कहा तो उसने माँगा कि वह गहरी निद्रा में सोना चाहता है, जब तक चाहे तब तक और जिसमें कोई बाधा न पहुँचाए। उसको यह वरदान मिला, परंतु साथ ही यह भी था कि यदि उसकी निद्रा में कोई व्यक्ति बाधा पहुँचाएगा तो उसके जागने पर उसके नेत्रों से निकलने वाली ज्वाला से वह व्यक्ति वहीं भस्म हो जाएगा।

कृष्ण ने कालयवन को कभी भी अपने साथ युद्ध करने की चुनौती नहीं दी। घमंडी राजा कृष्ण से बिना लड़े ही अपनी मृत्यु को प्राप्त हो गया।

17

महान मित्रता

जब कालयवन कृष्ण का पीछा कर रहा था, तब उसके सैनिक उन दोनों का पीछा कर रहे थे। वे इस प्रतीक्षा में थे कि यदि आवश्यकता पड़ेगी, तो वे अपने स्वामी के सहायता के लिए जाएँगे।

उन्होंने पहाड़ियों पर से एक अज्ञात अपरिचित व्यक्ति को आते हुए देखा, परंतु वह न तो कालयवन था, न ही कृष्ण। यह अपरचित और कोई नहीं, बल्कि राजा मुचुकुंद था, जिसने कालयवन के भस्म हो जाने का समाचार उन लोगों को दिया। जल्दी ही यह सूचना जरासंध तक पहुँच गई। वह तुरंत अपनी सेना लेकर आया। कालयवन के सैनिकों से यह जानकर कि कृष्ण और बलराम अभी भी उन पहाड़ियों में छिपे हुए हैं, उसने उस सारे क्षेत्र में आग लगवा दी।

पहाड़ी पर स्थित असंख्य वृक्ष जलकर राख हो गए, बड़ी-बड़ी चट्टानें टूट-टूटकर गिरने लगीं। सारा वन कई दिनों तक अग्नि में जलता रहा। जरासंध निश्चिंत था कि कृष्ण और बलराम भस्म हो गए होंगे!

जरासंध अट्टहास करता हुआ अपने महल वापस आ गया। उसका अट्टहास उस बंजर व मरुस्थल हो चुकी पहाड़ी में गूँज रहा था।

तब तक कृष्ण और बलराम समुद्र तट स्थित अपनी नई नगरी द्वारिका पहुँच गए।

जैसे जरासंध इस भुलावे में था कि कृष्ण और बलराम अब नहीं रहे, उसी प्रकार महान साम्राज्य के राजकुमार 'कौरव' भी इस विचार में थे कि उनके विरोधी 'पांडव' अब नहीं रहे। यह सब इस प्रकार हुआ था—

कौरव और पांडव चचेरे भाई थे। कौरवों के पिता, धृतराष्ट्र अंधे थे। उनका छोटा भाई पांडु एक विस्तृत साम्राज्य का शासक था, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर

थी। परंतु एक शाप के कारण पांडु को अपने परिवार के साथ वन में जाकर रहना पड़ा। उनकी मृत्यु के बाद, उनकी रानी कुंती अपने पाँच पुत्रों के साथ महल लौट आईं, परंतु धृतराष्ट्र के पुत्रों ने उनके साथ केवल दुर्व्यवहार किया।

कुंती का एक और पुत्र था, जिसका जन्म बहुत ही असामान्य दशा में हुआ था। जब कुंती एक अविवाहित युवती थी, एक महान ऋषि ने उन्हें एक मंत्र सिखाया। यदि वह उस मंत्र का उच्चारण कर किसी भी देवता का आह्वान करेंगी तो वे उसे आशीर्वाद स्वरूप एक पुत्र देंगे। अपनी अबोध उत्सुकता के कारण उन्होंने सूर्य देवता का आह्वान कर लिया, जिनके आशीर्वाद से कुंती ने एक पुत्र को जन्म दिया। लज्जा और घबराहट के कारण उन्होंने उस शिशु का पालन-पोषण नहीं किया। उनका लालन-पालन, नगर से दूर, एक सज्जन व्यक्ति ने किया। परंतु उसके पालक पिता ने शिक्षा के लिए उसको हस्तिनापुर भेज दिया।

धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे, जो 'कौरव' कहलाते थे। उनका यह नाम उनके पूर्वजों की ख्याति के कारण पड़ा। पांडव अपने पिता पांडु के नाम से 'पांडव' कहलाए। ये पांच भाई थे— युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव। पाँचों की दुर्दशा की कल्पना की जा सकती है जो 99 दुष्ट बालकों से घिरे हुए हों, जिनमें प्रमुख उनका बड़ा भाई दुर्योधन था (सबसे अनुज कौरव सज्जन व संवेदनशील था)। कर्ण जिसे अपने जन्म के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं था, दुर्भाग्यवश दुर्योधन का प्रिय मित्र बन गया।

धृतराष्ट्र, नेत्रहीन राजा ने दोनों दलों के राजकुमारों की शिक्षा के लिए बहुत ही अनुभवी गुरु द्रोणाचार्य को नियुक्त किया था। सभी विषयों में, विशेषकर युद्ध कला में पांडव कौरवों से श्रेष्ठ रहे।

इस युग में तीन लोग प्रकृति में निहित शक्तियों के भी स्वामी हुआ करते थे। वे अपनी शारीरिक क्षमता/शक्ति को रहस्यमयी ज्ञान जैसे तंत्र-मंत्र आदि की सहायता से और अधिक बढ़ाते थे। यह ज्ञान अस्त्रों-शस्त्रों के उपयोग के समय अत्यधिक सहायक होता था। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति किसी विशेष मंत्र को पढ़कर बाण चलाता तो वह साधारण बाण हजार गुना अधिक प्रभावशाली होता। ऐसे ही बहुत से मंत्र और श्लोक होते थे, जो विभिन्न अस्त्रों-शस्त्रों/आयुधों को भिन्न-भिन्न शक्तियों से आवेशित कर देते थे। एक साधारण बाण विद्युत के

समान घातक हो जाता, तलवार के एक वार से सैकड़ों सिर धड़ से अलग हो जाते और गदा का एक प्रहार पर्वत को भी नष्ट कर देता।

इस तरह अलौकिक शक्तियों से आवेशित होकर साधारण वस्तुएँ भी असीम शक्ति से भर जातीं।

गुरु द्रोण ने सभी राजकुमारों को शस्त्र चलाने के साथ जटिलतम कलाएँ भी सिखाईं। परंतु पांडव कौरवों से जल्दी सारे पाठ सीख रहे थे। इसके अलावा नगर की साधारण प्रजा और श्रेष्ठ कुलीन जन सभी पांडवों की प्रशंसा करते, क्योंकि पांडव बड़े विनम्र व अनुशासित थे। युधिष्ठिर ने अपनी सच्चाई, ईमानदारी व दयालुता से सभी को प्रभावित किया था। उनके चारों छोटे भाई उनकी आज्ञा का पालन उसी प्रकार करते, जैसे सैनिक अपने सेनापति का करते थे।

एक बार, एक प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसे देखने के लिए सभी संभ्रांत व्यक्ति और पड़ोसी राज्य के राजकुमार वहाँ उपस्थित थे। उसमें प्रत्येक विषय या खेल में पांडव कौरवों से श्रेष्ठ सिद्ध हुए। वे घुड़सवारी ऐसे कर रहे थे जैसे हवा में उड़ रहे थे। वे दूरस्थ लक्ष्यों को अपने बाण से बड़ी ही सहजता से भेद रहे थे। वे उद्दंड अश्वों और उपद्रवी हाथियों को पालतू मेमनों की तरह वश में करते। तालियों की गड़गड़ाहट से उनका अभिवादन किया गया। दूसरी ओर, कौरवों को बड़ी ही उदासीन प्रशंसा मिली। उन्होंने स्वयं को बहुत अपमानित अनुभव किया।

दुर्योधन बहुत दिनों तक सो नहीं पाया। ईर्ष्या की अग्नि उसके हृदय में भभक रही थी। एक बार उसने भीम को विष देने का प्रयास किया। भीम पांडवों में सर्वाधिक बलिष्ठ थे, परंतु उसका प्रयास असफल रहा। उसने एक नई योजना बनाई कि एक ही झटके में पाँचों पांडवों को एक साथ समाप्त कर दिया जाए।

नगर से दूर मनोरम स्थल वारणावत था। दुर्योधन ने कुशल कारीगरों को वहाँ एक सुंदर महल बनाने के लिए भेजा। पुत्र-मोह में, वृद्ध धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को बुलाकर कहा, “पुत्र, कई बार थोड़े समय के लिए परिवर्तन, स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। तुम और तुम्हारे योग्य, साहसी भाई निश्चय ही शिक्षा व प्रतियोगिता से थक गए होंगे। वारणावत जाओ और हमने जो महल वहाँ बनवाया है उसमें कुछ दिन विश्राम करो। मुझे लगता है कि वह महल बड़ा सुंदर है।”

युधिष्ठिर अपने बड़े पिता श्री धृतराष्ट्र का अपने पिता के समान ही सम्मान करते थे। उन्होंने अपने भाइयों को लिया और नए स्थान की ओर प्रस्थान कर दिया। माता कुंती भी उनके साथ थीं।

उन्होंने देखा कि वह महल न केवल सुंदर था- जैसा कि महाराज धृतराष्ट्र ने बताया था, बल्कि बहुत शानदार भी था। उन्होंने जल्दी ही वह जान लिया था जो संभवतः धृतराष्ट्र नहीं जानते थे कि वह महल लाख द्वारा निर्मित था— जो अति ज्वलनशील पदार्थ है। पांडवों को यह समझते देर नहीं लगी कि कौरवों द्वारा उन्हें यहाँ भेजने का क्या अशुभ उद्‌देश्य हो सकता है। चूँकि बुद्धिमानी, वीरता का प्रमुख लक्षण था, उन्होंने निर्णय लिया कि दुर्योधन के गुप्तचरों द्वारा महल जलाने से पूर्व वे स्वयं ही इस महल में आग लगा देंगे। वे यह दिखाना चाहते थे कि महल दुर्घटनावश अग्नि में भस्म हो गया और उसके भीतर के सभी लोग जलकर राख हो गए।

जिस रात्रि पांडव उस घर में आग लगाकर भागने वाले थे, उस रात्रि कुछ घुमक्कड़ व्यक्ति मदिरा के नशे में घर के भीतर-बाहर पड़े हुए थे। जब उस घर के अग्नि में भस्म हो जाने का समाचार और जले हुए शव हस्तिनापुर पहुँचे, कौरवों के आनंद की सीमा नहीं थी, जबकि उनके बड़े दुख में डूब गए थे।

मृत घोषित हो जाने के कारण पांडवों को कौरवों से डरने की आवश्यकता नहीं थी। कुछ दिनों तक उन्होंने स्वतंत्रतापूर्वक यूँ ही विचरते रहने का विचार किया ताकि दुर्योधन उनके लिए कोई समस्या न खड़ी कर दे।

ब्राह्मण वेश में इधर-उधर विचरण करने के दौरान वे द्रुपद नरेश के राज्य पांचाल गए।

महाराज द्रुपद ने अपनी पुत्री द्रोपदी के लिए एक स्वयंवर का आयोजन किया था। द्रोपदी उन्हें यज्ञ से प्राप्त हुई थी। कृष्ण जानते थे कि यह कोई साधारण कन्या नहीं है और भविष्य में घटित होने वाली किसी महत्वपूर्ण घटना में कोई बड़ी भूमिका निभाने के लिए भाग्य द्वारा उन्हें यहाँ भेजा गया है।

अतः वे लोग जो द्रोपदी से विवाह करना चाहते थे, उनके लिए महाराज द्रुपद ने एक कठिन परीक्षा का आयोजन किया था। उन्होंने एक भारी-भरकम सा धनुष बनवाया। द्रोपदी से विवाह करने के लिए किसी व्यक्ति को एक साथ पाँच बाण चलाकर ऊपर स्थित घूमते हुए लक्ष्य पर निशाना साधना होगा।



वहाँ स्वयंवर में उपस्थित राजकुमारों ने एक के बाद एक उस लक्ष्य पर निशाना साधने का प्रयास किया। यहाँ तक कि दुर्योधन भी असफल हो गया।

अब यह चुनौती सभी के लिए खुली थी। अर्जुन, जो भेष बदले हुए थे, आगे आए परीक्षा में सफल हो गए और सभी उन्हें अचरज से देखते रह गए। द्रोपदी ने उन्हें वरमाला पहनाई और द्रुपद ने कार्यक्रम समापन की घोषणा कर दी।

परंतु वहाँ उपस्थित सभी राजकुमार अर्जुन से ईर्ष्या करने लगे। उन्हें लगा कि यह ब्राह्मण धोखे से सफल हुआ है। "यह भिक्षुक इस रूपवती राजकुमारी को ले जाएगा और हम यूँ ही पलक झपकाते देखते रहेंगे?" वे चिल्लाए और अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। अचानक ही उन्होंने देखा कि उस ब्राह्मण का एक साथी एक बड़े से वृक्ष को जड़ सहित उठाकर उन पर आक्रमण करने के लिए खड़ा है। उन्हें इस बात का थोड़ा भी अंदाजा नहीं था कि वह दूसरा साथी भीम है।

परंतु एक व्यक्ति ऐसा था, जो भले ही उनसे कभी नहीं मिला था, परंतु फिर भी उन्हें पहचानते थे, वह थे कृष्ण। महाराज द्रुपद से आत्मीय संबंध होने के कारण कृष्ण वहाँ महत्वपूर्ण अतिथि के रूप में उपस्थित थे। वे तुरंत मंच पर खड़े हुए और उन अहंकारी राजकुमारों को इस अन्यायपूर्ण अपराध को रोकने का आदेश दिया।

"रुक जाओ मित्रो! आप सब अपने पथ से भटक रहे हैं। क्या आप सब भूल गए कि स्वयंवर में उपस्थित सभी आगंतुकों को इस खेल के नियमों को मानना ही होगा? इस ब्राह्मण ने आवश्यक परीक्षा उत्तीर्ण करके राजकुमारी का हाथ जीता है। अब इसकी दुलहन को छीनने का आपको क्या अधिकार है?"

राजकुमार अपनी गलती समझ गए ओर रुक गए। कृष्ण को हस्तिनापुर की खुशहाली का ज्ञान था– कौरवों द्वारा पांडवों के लिए उत्पन्न की गई समस्याओं का ज्ञान था– वे अर्जुन और उनके भाइयों से मिलने उनके शिविर गए। एक महान मित्रता जन्म लेने वाली थी।

18

विदर्भ का सभा स्थल

विदर्भ एक खूबसूरत राज्य था। यहाँ पर भीष्मक नाम का राजा राज्य करता था, जहाँ के लोग अच्छे स्वभाव के थे। इस राज्य में फल-फूल के अनेक वृक्ष थे और यहाँ पर बहने वाली नदी इसको हरा, सुंदर और ठंडा रखती थी।

इससे ज्यादा खूबसूरत राजा की बेटी राजकुमारी रुक्मिणी थी।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि वह विष्णु की संगिनी लक्ष्मी का अवतार थीं, क्योंकि विष्णु कृष्ण के रूप में अवतरित हुए थे, इसलिए इन्होंने इनके पीछे-पीछे मानव रूप में जन्म लिया।

कुछ लोग यह तो जानते थे कि कृष्ण विष्णु का अवतार हैं, पर रुक्मिणी के बारे में किसी को कोई जानकारी नहीं थी। विदर्भ में तो नहीं ही थी। अपने शर्मीले स्वभाव के कारण यह बात बताने में वह असमर्थ थी। और इस बात पर भी असमंजस था कि वह खुद भी इसके बारे में जानती थीं, क्योंकि अकसर देवी-देवता मानव जन्म लेने पर अपनी इच्छा से अपने-आप की पहचान को भूल जाते थे।

हालाँकि यह कोई नहीं जानता था कि वह देवी अवतार हैं, पर जो भी उनको देखता था उसकी आँख उनसे नहीं हटती थी। उनमें दैवीय सुंदरता थी।

सुंदर झील एवं बगीचे में स्थित राजा भीष्मक का महल रुक्मिणी का मनपसंद आरामगाह था। जहाँ उनकी आज्ञाकारी और चंचल सखियों के अलावा बतख, मोर, हिरण और बारहसिंघा उनका साथ पाने के लिए आतुर रहते थे। पर कुछ दिनों से राजकुमारी अकेले रहने से कुंठाग्रस्त हो गई थीं।

एक दिन शाम को मोर ने अपने रंग-बिरंगे पंखों को फैलाकर राजकुमारी के सामने नृत्य किया, पर राजकुमारी ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। रानी की एक सखी ने उनकी मनपसंद धुनों को गुनगुनाया, पर उसका यह प्रयास भी उनके मन को नहीं बहला सका।

उनकी मुख्य सेविका ने आकर जोर से कहा, “ओ प्यारी राजकुमारी, नगर में एक बड़ा जादूगर आया है। वह टोपी से बंदर निकालता है, एक बाल को सुंदर माला में बदल सकता है, हमारी आँखों से ओझल हो सकता है और ऐसी बहुत सारी जादूगरी करता है। वह आपके सामने प्रस्तुति देकर बहुत खुश होगा।”

आँखों में चमक लिए उत्सुकता के साथ राजकुमारी ने पूछा! “वह जादूगर और क्या कर सकता है?”

“ऐसी बहुत सारी अच्छी चीजें। ओ राजकुमारी!”

“क्या वह वो ला सकता है जो मैं चाहती हूँ।”

“हाँ शायद, क्योंकि मैंने उसे राजदरबार में प्रधानमंत्री की जेब से खरगोश निकालते देखा है। मैंने यहाँ तक सुना है, उसने एक छोटा नटखट भूत भी बनाया है जो कि बुलबुले की तरह गायब हो जाता है,” सेविका ने उत्तर दिया।

ऐसा है क्या? मेरी एक सलाह है।

“सलाह क्यों राजकुमारी? मुझे आदेश करें और यह हो जाएगा!” उत्साही सेविका ने कहा।

“जल्दी जाओ और उससे कहो कि वह छोटे नटखट भूत को दोबारा बनाए और उसकी शादी करे।” राजकुमारी ने हाथ हिलाकर कहा और फिर अपने विचारों में गुम हो गई।

पर सेविका ने हार नहीं मानी और कहा, “काश! एक जादूगर होता जो ऐसे व्यक्ति को बनाता, जिससे हमारी राजकुमारी शादी करना चाहती।”

“ओ मूर्ख लड़की, कोई जादूगर ऐसा कैसे कर सकता है? क्या जिससे मैं शादी करना चाहती हूँ वह सबसे बड़ा जादूगर नहीं हो सकता?”

अंत में चतुर सेविका रुक्मिणी की दिल की गुप्त बात समझ गई। इसके दूसरे दिन नगर में एक भिक्षुक ने गाते हुए कृष्ण को सबसे बड़ा जादूगर बताया।

कृष्ण की बचपन की लीलाएँ, उनकी मनमोहक छवि और उनके नगर की अचंभित कर देने वाली बातें सभी जगह फैल गईं और सभी उनके दीवाने हो गए। वास्तव में जैसे ही कोई कृष्ण की बात करता या उनके बारे में गाकर बताता, रुक्मिणी बहुत ध्यान से सब सुनतीं।

मुख्य सेविका अन्य सेविकाओं को बाहर करके राजकुमारी की बगल में बैठ गई।



"ओ प्यारी राजकुमारी" उसने प्रेमपूर्वक कहा "मुझ पर धिक्कार है जो मुझे पहले यह समझ नहीं आया कि और कोई नहीं, बल्कि कृष्ण ही आपके लिए उपयुक्त वर हैं। पर ..." राजकुमारी बहुत अच्छे से यह जान गई थी कि सेविका आधी बात पर क्यों रुकी। उसका बड़ा भाई रुक्मी, जो राजा था, दुर्भाग्य से कृष्ण से बहुत चिढ़ता था। जैसे ही कोई कृष्ण की प्रशंसा करता, वह आगबबूला हो जाता।

पर रुक्मिणी की मुख्य सेविका ने बहुत कुशलतापूर्वक एक कार्य किया। उसने इसके बारे में रानी को बताया और रानी ने राजा को। जल्दी ही राजकुमारी और उनको प्यार करने वाले माता-पिता रानी के महल में एकांत में मिले।

"मेरी बच्ची, संतों का कहना है कि कृष्ण विष्णु के अवतार हैं। क्या तुम ऐसा सोचती हो कि वह तुमसे विवाह के लिए राजी होंगे?" राजा ने पूछा।

"पिताजी, मुझे लगता है कि वह राजी होंगे। भगवान से कई तरीकों से मिला जा सकता है— मार्गदर्शक के रूप में या मित्र के रूप में। मैं उन्हें अपनी आत्मा के रूप में देखती हूँ। मेरा प्रेम पवित्र है— इतना पवित्र कि कोई भी मानव इसके लिए उपयुक्त नहीं है। मैं निश्चित रूप से जानती हूँ। हालाँकि यह नहीं जानती कि मैं यह कैसे जानती हूँ। मेरे जन्म का एकमात्र कारण कृष्ण की सेवा करना है।" रुक्मणी ने शांत और विश्वासपूर्ण स्वर में कहा।

राजा ने सहमति में सिर हिलाया। रानी द्रवित हुईं और राजकुमारी मुस्कराईं।

पर जल्दी ही उनकी मुस्कान की जगह दृढ़निश्चय ने ले ली, जब उन्हें यह पता चला कि उनका बड़ा भाई रुक्मी उनकी इस इच्छा पर हँस रहा है। क्योंकि उसने अपने परम मित्र चेदि के राजा शिशुपाल को इसके लिए चुना है। रुक्मी बदमिजाज था और अपने माता-पिता को दबा कर रखता था।

राजा ने जल्द ही शुभ दिन पर रुक्मिणी की शादी की व्यवस्थाएँ शुरू कर दीं। यह जान कर शिशुपाल की खुशी का ठिकाना नहीं रहा कि वह सबसे सुंदर राजकुमारी से शादी करने जा रहा है।

"क्या शिशुपाल मुझसे शादी करना चाहता है? वह सिर्फ मेरे मृत शरीर को ही छू पाएगा।" ऐसा कहते राजकुमारी को सेविकाओं के सामने सुना गया। इसके बाद वह बहुत ही कम बोलीं, उनकी माँ और अन्य यह सोचकर शांत हो गए कि इस परिस्थिति से राजकुमारी ने समझौता कर लिया है।

विदर्भ में उत्सव का माहौल था। अंग देश, बंग, कलिंग, पांड्य, मालवा, कैकेय, मगध, कौशल और बहुत सारे अन्य राज्यों के राजा एवं रुक्मी के मित्र नगर पहुँच गए। इन सबके बीच में प्रसन्नचित्त शिशुपाल के पहुँचने पर ढोल-नगाड़े, हाथी, घोड़े और महाभोज का रुक्मी द्वारा आयोजन किया गया।

परंपरा के अनुसार विवाह के पहले वधू के अम्बा देवी मंदिर में पूजा करने की प्रथा थी। शाही मेहमान सड़क के दोनों ओर राजकुमारी की एक झलक पाने के लिए खड़े थे। उनके साथ उनके मित्र और सहायक भी थे। उनके थोड़ा पीछे नागरिकों की बड़ी भीड़ थी। उनके चेहरे खुशी और उत्साह से चमक रहे थे, क्योंकि उनके सामने से वधू रूप में सजी उनकी राजकुमारी पूरे लाव-लश्कर के साथ मंदिर जा रही थी।

मुख्य पुजारी ने राजकुमारी और उनकी सखियों के अलावा सभी को बाहर जाने की आज्ञा दी थी।

बाहर मधुर संगीत बज रहा था। राजकुमारी के अलावा सभी ने माँ अम्बा के समक्ष प्रार्थना की। राजकुमारी शांति से स्थिर खड़ी रहकर एकटक देखती रहीं। यह कोई नहीं जानता था कि उन्हें वहाँ क्या संकेत मिले, पर वह बहुत दिनों बाद मुस्कराईं!

शाही मेहमान और नागरिक अभी मार्ग के दोनों तरफ खड़े थे। उनकी राजकुमारी को देखने की चाह एक झलक देखने के बाद और बढ़ गई। जल्द ही यह जुलूस मंदिर से बाहर निकला और सभी अतिथि साँस रोककर ध्यानपूर्वक रुक्मिणी को देखने के लिए आतुर हो गए।

वे यह देखकर बहुत खुश हुए कि राजकुमारी जो मंदिर जाते हुए सिर नीचे किए रहीं, वह अब उन्हें देख रही है।

"मेरे भगवान, राजकुमारी आपको देखने के लिए आतुर थी!" एक चापलूस मित्र ने शिशुपाल से कहा। यह सुनते ही शिशुपाल का चेहरा खिल गया और वह अपनी मूँछे ऐंठने लगा।

अचानक राजकुमारी मार्ग बदलते हुए भीड़ के पीछे स्थित सड़क पर चल पड़ीं। उनकी सेविकाएँ उनके साथ थीं। भीड़ ने जल्दी ही हटकर उनको रास्ता दिया। उससे पहले की कोई यह समझ पाता कि क्या हो रहा है, सूने स्थान में खड़ा एक रथ दूर जाने लगा।

वहाँ पर उपस्थित लोगों को यह समझने में समय लगा कि युवतियों के समूह से एक गायब है और वह कोई नहीं राजकुमारी रुक्मिणी हैं। क्या उन्हें अनजान रथ के द्वारा उठा लिया गया?

वहाँ पर उपस्थित लोगों को जैसे ही यह अहसास हुआ, उन्हें विशेषकर राजा रुक्मी को यह समझने में देर नहीं लगी कि रथ चालक कौन हो सकता है? बहरा कर देने शोर के बीच उसने अपने मित्रों और सैनिकों को भागते हुए रथ के पीछे जाने को कहा।

शिशुपाल का हाथ मूँछ से गिरकर तलवार पर आ गया। उसने म्यान से तलवार निकाली और अपने ही कुछ साथियों को काटते हुए गुस्से और पागलपन ही हद पार करते हुए जल्दी में रथ के पीछे भागा।

पर वहाँ कोई रास्ता नहीं था। नगर की सीमा के बाहर बलवान बलराम अपनी बड़ी सेना के साथ खड़े थे। लड़ने का असफल प्रयास करते हुए रुक्मी, शिशुपाल और उनके साथियों ने कृष्ण के रथ को दूर जाते हुए, अदृश्य होते हुए देखा।

रुक्मिणी की मुख्य सेविका के अलावा महल में यह कोई नहीं जानता था कि उन्होंने कृष्ण को अपनी रक्षा के लिए आग्रह करते हुए संदेश वाहक भेजा।

सूरज अस्त होते ही विजयी बलराम अपने पीछे रुक्मी, शिशुपाल और उनके मित्रों को टूटे अहंकार के साथ छोड़ गए।



19

नए नगर का उदय

पांचाल राज्य के दरबार में अर्जुन की जीत ने हलचल मचा दी। सभी आश्चर्य में थे कि साधारण ब्राह्मण जैसे दिखने वाले बहादुर जवान थे, जिन्होंने रानी की सुरक्षा में लगी टुकड़ी को दूर रखा।

उनकी उत्सुकता ने जल्दी ही सच को बाहर ला दिया। हजारों लोग राजकुमारियाँ, महात्मा और साधारण लोग इस बात की खुशी मना रहे थे कि वारणावत में बने लाख के घर से पांडव सुरक्षित बच गए। वे सभी जिंदा थे और उतने ही ऊर्जावान थे, जितना हस्तिनापुर में आयोजित होने वाली प्रतियोगिताओं में वे रहते थे।

हस्तिनापुर में इस समाचार से तीन अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ हुईं।

कौरव सदमे में थे, क्योंकि पांडव न सिर्फ बच गए थे, बल्कि उन्होंने पांचाल राज्य से महत्वपूर्ण गठबंधन कर लिया था और सबसे बुरी बात यह थी कि दुर्योधन अपने आप को द्रोपदी का भावी वर मानता था और अन्य लोगों के समान ही वह वधू को जीतने वाले हाथों से छीनने में असफल रहा।

और बेचारा कर्ण! वह भी वहीं उपस्थित था और दुर्योधन के असफल होने पर अपने आप को अगले उम्मीदवार के रूप में देख रहा था। पर उसको उस पद के लिए अयोग्य माना गया।

साधारण और भद्रजनों के बीच में राहत और खुशी का माहौल था, क्योंकि वह उन पाँचों बहादुर भाइयों से बहुत प्यार करते थे।

पर धृतराष्ट्र अकेले ऐसे व्यक्ति थे, जिनकी भावनाएँ इन सभी से अलग थीं। वह बहुत शर्मिंदा थे, क्योंकि उनके कारण पांडवों ने वारणावत में शरण ली थी। पांडवों की मृत्यु के समाचार ने उन्हें बहुत दुखी किया था। साथ ही साथ

यह सोचकर वह संतुष्ट थे कि उनके बच्चों का अब कोई दुश्मन नहीं है। इसलिए दरबार और राज्य में अब शांति रहेगी।

अब बूढ़े राजा ने संदेश वाहक द्वारा पांडवों को बधाई दी और वापस आने के लिए कहा।

पांडव कृष्ण के साथ हस्तिनापुर वापस आए जिनके साथ उनकी मित्रता हो गई थी। हालाँकि धृतराष्ट्र ने उनका स्वागत गर्मजोशी से किया, पर नेत्रहीन होने के बाद भी दो चीजें उनकी नजरों से बच न सकीं। पहली, हस्तिनापुर की प्रजा पांडवों के वापस लौटने पर बहुत उत्साहित व प्रसन्न थी और दूसरी, कौरव हालाँकि अभी शांत थे, पर वे इस बात की तैयारी कर रहे थे कि किसी भी समय किसी भी तरह पुनः उपद्रव किया जाए।

राजा ने इन दोनों ही गुटों को पृथक रखने के विषय में विचार किया।

उन्होंने घोषणा की कि पांडव आधे राज्य के अधिकारी हैं, पर उनको अपनी राजधानी हस्तिनापुर से दूर खांडव जंगल के बाहर स्थित दलदली क्षेत्र की सीमा में बनानी होगी।

यह स्थान किसी भी स्थिति में खुशनुमा नहीं था। खांडव के वन राक्षसों, नरभक्षियों, प्रेतों और अनेक मानव विरोधी के लिए बदनाम थे। और यह सब पांडवों के वहाँ पर रहने और महल बनाने के प्रति उदारभाव नहीं रखते हुए विरोधी होंगे। हालाँकि कृष्ण की प्रेरणा से पांडवों ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया और नई राजधानी बनाने के लिए कार्य करने लगे।

अप्रत्याशित तरीके से उन्हें सहायता मिली। एक दिन कृष्ण और अर्जुन पेड़ के नीचे विश्राम कर रहे थे। तभी एक जटाधारी तेजमय व्यक्ति जो कि संत जैसे दिख रहे थे, उनके पास आए।

"मैं भूखा हूँ। क्या आप मेरी भूख मिटाने में सहायता करेंगे?" उसने पूछा।

"आप क्या खाना चाहेंगे" कृष्ण ने पूछा।

जंगल की तरफ इशारा करते हुए उसने कहा "सिर्फ यही मुझे संतुष्ट कर सकता है।"

कृष्ण समझ गए कि यह भूखा अजनबी कोई और नहीं बल्कि, अग्नि देवता हैं। जंगल को नष्ट करने के अलावा वहाँ रहने वाले बदमाश लोगों को भगाने का और कोई रास्ता नहीं था। पर अग्नि देवता यह करने में कई बार असफल रहे, क्योंकि जंगल की रक्षा देवता इंद्र कर रहे थे।



"हम आपकी इस जंगल को समाप्त करने में सहायता करेंगे। पर यदि आपके ऊपर आक्रमण हुआ, तो हमारे पास आपकी सुरक्षा के लिए पर्याप्त शस्त्र नहीं हैं।" अर्जुन ने कहा।

अग्नि देवता वरुण से 'गांडीव' नाम का चमत्कारी धनुष लाए। ऐसा शस्त्र जो अर्जुन के सभी महत्वपूर्ण युद्ध में जीवन भर साथ रहा।

सुरक्षा के आश्वासन पर अग्नि देवता ने एक ही बार में जंगल को अनेक लौ की सहायता से घेरे में लिया। चट्टानों के टूटने की कर्णभेदी आवाजों से इंद्र सतर्क हो गए। उन्होंने बड़े-बड़े वर्षा के बादल भेजे जो आग के ऊपर बरसने लगे। पर अर्जुन ने वरुण द्वारा प्राप्त धनुष से अलौकिक बाणों से बादलों को दूर दिशाओं में भेज दिया।

इंद्र के महान हाथी ऐरावत ने जंगल में पानी का छिड़काव करना शुरू कर दिया। उसके चिंघाड़ने से यमुना नदी के किनारे हजारों की संख्या में हाथी एकत्रित हो गए और सूँड़ में पानी भरकर अग्नि पर डालने लगे।

अग्नि और पानी के बीच में युद्ध कई दिनों तक चला। हार न मानते हुए अग्नि लगातार जंगल को नष्ट करती रही। राक्षस, नरभक्षी और अन्य जीव-जन्तु आग में जल गए, पर ऐसे जीव जिन्होंने भगवान का स्मरण किया या कृष्ण और अर्जुन की शरण में गए, वे बच गए।

बचने वाले भाग्यशाली लोगों में माया दानव भी था। राक्षस होते हुए भी उसकी शिल्पकला और मूर्तिकला अद्‌भुत थी। वह जंगल में अस्थायी तौर पर रुका हुआ था। अर्जुन ने उससे मित्रता का हाथ बढ़ाया।

15 दिनों के बाद अग्नि देवता स्वादिष्ट भोजन से संतुष्ट होकर कृष्ण और अर्जुन से आज्ञा लेकर वहाँ से विदा हुए। कृष्ण ने भी द्वारका की ओर प्रस्थान किया।

अर्जुन के मित्रवत् व्यवहार और आवभगत के प्रति आभार जताते हुए माया दानव ने पांडवों के लिए भव्य महल का निर्माण आरंभ किया। जब यह पूर्ण हुआ तो प्रजा इसके सौंदर्य से अचंभित रह गई, क्योंकि ऐसी शिल्पकारिता उन्होंने पहले कभी नहीं देखी थी।

कई लोग डरावने जंगल के हट जाने के कारण इसके चारों तरफ रहने लगे। इंद्रप्रस्थ नाम की पांडवों की राजधानी शीघ्र विकसित होने लगी और एक सुंदर

नगर के नाम से प्रसिद्ध हुई। सभी राज्यों में युधिष्ठिर के राजदरबार की चर्चाएँ होने लगीं।

कौरवों ने यह सोचा कि उन्हें पांडवों के बारे ज्यादा चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।

उनका विचार था कि राक्षसों और नरभक्षियों से भरी हुई बंजर जमीन में वे कभी सफल नहीं होंगे, लेकिन अब उस जगह के रूपांतरण की सूचना ने उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया।

और उनका यह आश्चर्य जल्दी ही सदमे में बदल गया। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि पांडव बहुत ही दुर्लभ राजसूय यज्ञ करने वाले हैं। यह बहुत ही बहादुरी का कार्य था। यदि कोई अन्य राजा यज्ञ करने वाले को चुनौती नहीं देगा, तो इसका तात्पर्य यह है कि वह राजाओं का राजा है।

देवर्षि नारद ने युधिष्ठिर को इस यज्ञ की तैयारी करने की सलाह दी थी।



20

दो मुठभेड़

युधिष्ठिर के भाइयों ने देवर्षि नारद के प्रस्ताव को बड़े ही आदर से स्वीकार किया। इंद्रप्रस्थ राजदरबार में उपस्थित सभी संभ्रांत व्यक्तियों ने और पांडवों के मित्रगण इस प्रस्ताव पर खुशी से उछल पड़े।

पर बिना कृष्ण की सहमति के युधिष्ठिर इसके लिए तैयार नहीं थे।

युधिष्ठिर के एक संदेश पर कृष्ण इंद्रप्रस्थ आए। युधिष्ठिर से कृष्ण ने कहा "मुझे इस बात पर कोई संदेह नहीं है कि तुम सभी राजाओं के राजा बनने की योग्यता रखते हो। पर तुम्हारे प्रति निष्ठा प्रकट करने वाले राजा कहाँ हैं?"

कृष्ण ने राजाओं की स्थितियों को विस्तार से बताया। मगध के तानाशाह जरासंध ने 86 राजाओं को पकड़कर राजधानी गिरिव्रज के बंदीगृह में रखा हुआ है और वह 14 और राजाओं को बंदी बनाकर पूरे 100 राजाओं को देवता के समक्ष बलि देने की तैयारी कर रहा है।

हालाँकि ऐसा किसी ने सुना नहीं था। पर घमंडी जरासंध कुछ ऐसा करना चाहता था, जिसके बारे में किसी ने स्वप्न में भी न सोचा हो।

"और यह निश्चित है कि सभी राजा तुमको अपना राजा खुशी से स्वीकार करेंगे, पर जरासंध ऐसा कभी नहीं करेगा।" कृष्ण ने सावधान करते हुए कहा।

पर कृष्ण किसी भी तरह से पांडवों की यज्ञ के उत्साह को कम नहीं करना चाहते थे। उनके मन में कुछ और ही था। उन्होंने युधिष्ठिर को प्रस्ताव दिया कि अर्जुन और भीम को उनके साथ गिरिव्रज जाने की अनुमति दी जाए। तभी वे उस तानाशाह का अंत करके सभी असहाय राजसी बंदियों को मुक्त कराएँगे।

युधिष्ठिर ने इस योजना के लिए अनुमति दी और तीनों ही गिरिव्रज को प्रस्थान कर गए।

उनको नगर में प्रवेश करने के लिए कई पहाड़ों को पार करना पड़ा। वहाँ सबसे ऊँची चोटी पर तीन बड़े ढोल लटके हुए थे, जिनको समय-समय पर बजाकर जरासंध की उपस्थिति का उद्घोष किया जाता था।

इन तीनों ने उन ढोल के साथ-साथ उस चोटी को भी नष्ट कर दिया जिस पर वे टँगे हुए थे।

जरासंध कुछ अजनबियों के द्वारा महल के रास्ते में स्थित ऊँची चोटी के ध्वस्त होने का समाचार सुन आश्चर्यचकित होने की बजाय खुश हुआ। यदि यह सच है तो यह कोई प्राकृतिक आपदा ही होगी। हालाँकि वह अपने आप को धार्मिक अनुष्ठान के लिए तैयार कर रहा था, इसलिए इस बात की खोज करने और उन घुसपैठियों को मारने का कोई विचार नहीं आया, यदि यह बात सच थी तो। उसको अपनी शक्ति पर विश्वास था और वह यह समझ रहा था कि वह कुछ दिन इंतजार कर सकता है।

पर कुछ ही समय में उसने उन अजनबियों को अपने सामने खड़ा पाया। क्योंकि वे ब्राह्मण वेश में थे, इसलिए जरासंध ने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया। पर उन लोगों ने अपना परिचय देकर उस पर यह आरोप लगाया कि सौ राजाओं की प्रस्तावित बलि एक नृशंस कार्य है।

"लेकिन मैंने उनको हरा करके बंदी बनाया है। मैं उनके साथ जो चाहे वो कर सकता हूँ। यह मेरा अधिकार है।" जरासंध ने कहा।

"यदि यह सही है तो आपको हमें भी उन सबको स्वतंत्र कराने का अधिकार देना होगा, क्योंकि उनमें हमारे मित्र और शुभचिंतक शामिल हैं।" तीनों ने जवाब दिया।

जरासंध हँसा और बोला "आप मेरे शरीर पर कोई खरोंच लगाए बिना अपने अधिकार की बात कैसे कर सकते हैं?"

"क्या आप तीनों में एक साथ मुझसे लड़ने की हिम्मत है?" उसने ताना देते हुए कहा। "हालाँकि मुझे थोड़ी कसरत करने से परहेज नहीं है!" उसने आगे कहा।

"हम तीनों में से किसी एक को चुन लो," कृष्ण ने शांत भाव से कहा।

अब जरासंध को यह समझ में आ गया था कि ये तीनों अपना कार्य पूर्ण करने ही आए हैं। उसने तीनों को ध्यान से देखा और पहलवान की छवि वाले भीम को चुना।

फिर दोनों एक-दूसरे पर झपट पड़े। इस युद्ध की सूचना जंगल में आग की तरह फैल गई और हजारों लोग इसे देखने के लिए दौड़ पड़े। युद्ध बहुत लंबे समय तक चला, जिसमें दोनों ही योद्धा ताकत और कौशल में बराबर दिख रहे थे।

परंतु अंत में भीम ने थके हुए जरासंध को उठाकर अपने सिर के चारों तरफ सौ बार घुमाकर जमीन पर पटक दिया। और एक पैर को खींच दिया। क्योंकि जरासंध ने दो भाग में दो माताओं से जन्म लिया था और राक्षसी के द्वारा जोड़ा गया था, इसलिए उसका शरीर खींचने पर लंबाई में दो भाग में बँट गया। यह उसका अंत था।

विजयी होने के बाद उन्होंने 86 राजाओं को मुक्त किया। इन सभी आभारी राजाओं ने युधिष्ठिर के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करने के लिए इंद्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान किया।

इसके बाद भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव हर एक के नेतृत्व में सेना की एक-एक टुकड़ी चारों दिशाओं में अन्य राजाओं के सहयोग की अपेक्षा करते हुए निकल पड़ी। तब तक युधिष्ठिर बलवान राजा के रूप में प्रसिद्ध हो गए थे। अधिकांश राजाओं ने इच्छापूर्वक स्वीकार किया और कुछ राजा जो इसके लिए तैयार नहीं थे, उन्होंने नियमानुसार युद्ध किया और पराजय के बाद नम्रतापूर्वक युधिष्ठिर का आधिपत्य स्वीकार किया।

सभी राजा इंद्रप्रस्थ में बहुमूल्य उपहार लेकर एकत्रित हुए, यहाँ तक कि गुस्सैल स्वभाव वाले शिशुपाल एवं दुर्योधन और आदरणीय भीष्म और द्रोण निमंत्रण पर स्वयं उपस्थित हुए।

पुजारी और संतों ने यज्ञ की घोषणा की। यज्ञ के नियमानुसार युधिष्ठिर को किसी एक व्यक्ति के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करनी थी।

"श्रीमान इन सभी अतिथियों में किसको सबसे महान मानूँ?" युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा।

भीष्म गहरी सोच वाले महान संत थे और वह कृष्ण के देवत्व को जानते थे। अतः बिना किसी संकोच के, बिना एक पल गँवाए उन्होंने कहा, "वह कृष्ण जिससे तुम प्यार करोगे, मेरे पुत्र" भीष्म ने सलाह दी।

भीष्म ने वही कहा जो युधिष्ठिर के मन में था। अतः उन्होंने अपनी श्रद्धा कृष्ण के प्रति प्रदर्शित की।

तुरंत ही शिशुपाल ने खड़े होकर उनकी इस पसंद का प्रतिकार किया। "कैसे तुम किसी ऐसे राजा को सर्वोच्च सम्मान देकर हमारा अपमान कर सकते हो। जिसकी राजा के रूप में स्थिति संदिग्ध है? यदि तुम्हें बड़े लोगों में से ही चुनना है तो महान भीष्म यहाँ पर उपस्थित हैं। राजाओं में महान दुर्योधन हैं। शिक्षकों में तुम्हारे अपने गुरु द्रोण हैं। कृष्ण इन सबसे ऊपर कैसे हो सकते हैं?" उसने पूछा। और उसके मित्रों ने इस बात पर अपनी सहमति दी।

भीष्म ने यह कहते हुए शांत करने का प्रयास किया कि देवत्व सबसे महान है और मनुष्य से भी बड़ा होता है। वे और युधिष्ठिर कृष्ण की दैवीय शक्तियों के प्रति आश्वस्त हैं। और सबसे ज्यादा प्यार करने वाले व्यक्ति का चयन करना युधिष्ठिर का अधिकार है। उनके चयन पर प्रश्न उठाने का अधिकार किसी को नहीं है।

"आपकी अतिथि रूप में उपस्थिति ही यह प्रमाण है कि आपने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ करने के अधिकार को स्वीकारा है। अब आप इस उत्सव में विघ्न क्यों पैदा करना चाह रहे हैं?" कई और राजाओं ने शिशुपाल से पूछा।

पर शिशुपाल गुस्से से काँपने लगा और ऊँची आवाज में कृष्ण को अपशब्द कहने लगा। ऐसा लग रहा था अज्ञानी हिंसक शक्तियों के वशीभूत हो गया है। उसके व्यवहार से सभी आक्रोशित थे। वह कृष्ण को अपनी शक्ति दिखाने के लिए बार-बार ललकार रहा था।

अंततः कृष्ण खड़े हो गए, एक क्षण के लिए वहाँ सन्नाटा हो गया। वह मुस्कराए और एकत्रित लोगों को संबोधित करते हुए धीरे से बोले, "मैंने इस व्यक्ति को कभी नुकसान नहीं पहुँचाया। हालाँकि इनकी मेरे मित्रों के प्रति दुर्व्यवहार और क्रूरता की सूची बहुत लंबी है। आज इनके पाप का घड़ा भर चुका है क्योंकि यह आज के कार्यक्रम में विघ्न डाल रहा है।"

"वास्तव में यह दंड का अधिकारी है।" कई क्रोधित आवाजें आईं।

"सजा?" शिशुपाल हँसा और अपनी तलवार निकालते हुए उसने कहा, "यहाँ कौन है जो मुझे दंड देगा?"

अचानक कृष्ण के हाथ में विष्णु का शस्त्र सुदर्शन चक्र प्रकट हो गया। वह घूमता हुआ तेजी से शिशुपाल की ओर लपका और उसके सिर को काट दिया।



वहाँ पर उपस्थित कुछ भाग्यशाली लोगों ने आश्चर्यजनक दृश्य देखा। शिशुपाल के शरीर से प्रकाश बाहर निकला और कृष्ण के पास जाकर उसने सिर झुकाया और कृष्ण में ही समाहित हो गया।

दैवीय वरदान और दैवीय दंड में कोई विशेष अंतर नहीं था। दोनों ही क्रियाओं में दया की भावना प्रबल थी। देवता न सिर्फ उन लोगों को अपने पास बुलाते हैं जो उनके सामने समर्पण करते हैं बल्कि ऐसे लोगों पर भी कृपा करते हैं जो उनका विरोध करते हैं और उन्हीं के द्वारा मारे जाते हैं।



दो मित्र

दूर द्वारिका नगरी में, मेरे मित्र कृष्ण निवास करते हैं। वे वहाँ के यशस्वी शासक हैं। उनके मानस पटल में निश्चय ही मेरी स्मृति धुँधली पड़ गई होगी। क्या मेरा नाम 'सुदामा' अथवा मुझे गुरुकुल में सब मुझे जिस नाम से जानते थे 'कुचैला', वह स्मरण भी होगा, उन्हें अथवा उनके लिए कुछ महत्व भी रखता होगा? एक छोटे-से गाँव में रहने वाले निर्धन ब्राह्मण ने अचरजपूर्वक सोचा।

परंतु वे दोनों महान अभिन्न मित्र थे, जब वे ऋषि संदीपनी के आश्रम में छात्र रूप में रहा करते थे। सुदामा उस संध्याकाल को कैसे भूल सकते हैं, जब वह और कृष्ण ईंधन के लिए लकड़ियाँ एकत्रित करने वन में गए थे और मार्ग भटक गए थे? जल्दी ही आकाश के किसी कोने से एक बादल उड़ता हुआ आया। उसकी गड़गड़ाहट मगरमच्छ के स्वर के समान थी और फिर हजारों बाघों की भयंकर गर्जना के समान कानों को बहरा करने वाली हो गई।

दोनों मित्र एक वृक्ष पर मार्ग ढूँढ़ने के लिए चढ़ गए परंतु पूरा वन अंधकारमय हो जाने के कारण नीचे उतरने से डर रहे थे। तूफान आने वाला था और वन पशु इधर-उधर आश्रय की खोज में भाग रहे थे।

जल्दी ही वन में मूसलाधार वर्षा होने लगी और जिस वृक्ष पर वे चढ़े थे, वह भयंकर आँधी में जोर-जोर से हिलने लगा। हवा व वर्षा के शोर और बादलों की गड़गड़ाहट से वे एक-दूसरे को सुन नहीं पा रहे थे। जब बिजली चमकती तो वे उसके प्रकाश में एक-दूसरे को देख पाते, जिससे उन्हें ढाँढ़स बँधती। घंटों बीत गए, भोर होने तक वह तूफान थम गया। उनके गुरु और अन्य साथी उन दोनों को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आए और आश्रम ले गए। "तुम्हें भय नहीं लगा?" एक साथी ने सुदामा से पूछा।

"जब कृष्ण साथ हो तो किसी को भी, किसी भी समस्या का भय कैसे हो सकता है?" सुदामा ने तपाक से उत्तर दिया। कृष्ण ने दूर से यह सुना और मुस्कराने लगे। कितनी मधुर और मनमोहक मुस्कान थी वह! उतनी मधुर मुस्कान हो जिसकी उस पर सुदामा का इतना दृढ़ विश्वास कैसे हो सकता है।

परंतु सुदामा को यह सदा से ज्ञात था और उन्होंने हृदय की गहराइयों से यह अनुभव किया था कि उनका यह मित्र कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। वर्ष बीतते गए। वे एक-दूसरे से अलग हो गए– सुदामा एक निर्धन पुजारी और कृष्ण राजा बने। बस एक बात जो अब तक परिवर्तित नहीं हुई थी, वह था सुदामा का कृष्ण के प्रति अडिग विश्वास कि कृष्ण कोई असाधारण व्यक्ति है। सुदामा का कृष्ण के साथ बिताए दिनों का स्मरण किए बिना एक दिन भी व्यतीत नहीं होता था।

और उन्हें एक बड़ा ही रोमांचकारी अनुभव होता था। वे भगवान विष्णु के उपासक थे। जब भी वे भगवान विष्णु का ध्यान करते, उन्हें कृष्ण का मुखड़ा दिखाई देता। धीरे-धीरे उन्हें यह विश्वास हो गया कि कृष्ण, भगवान विष्णु के अवतार हैं।

जब भी वे ध्यान की परमानंद अवस्था में होते तो कृष्ण, मेरे सखा, मेरे इष्ट! पुकारते हुए बरबस ही उनके नेत्र से अश्रुधारा बहने लगती।

परंतु एक दिन उन्हें बड़ा दुख हुआ। "मैं यह सुनते-सुनते थक गई हूँ कि कृष्ण आपके मित्र हैं। यदि ऐसा है, तो आप जाकर उनसे मिलते क्यों नहीं। एक राजा को अपने निर्धन मित्र की सहायता करनी ही चाहिए। हो सकता है, उनके दिए उपहारों से बहुत लंबे दिनों के लिए हमारी दरिद्रता दूर हो जाए।" सुदामा की पत्नी ने कहा। यह सुनते ही सुदामा की नसों में उत्साह दौड़ने लगा। कृष्ण से मिलन! ऐसा असीम आनंद जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। इतने वर्षों में ऐसा विचार क्यों नहीं आया मन में?

यह तो ऐसा है, जैसा सौभाग्य की देवी स्वयं तुम्हारे मुख से बोल रही हो। परंतु वहाँ जाने में मुझे बहुत समय लगेगा, तुम जानती हो। द्वारिका निकट नहीं, अपने हृदय के उत्साह को दबाते हुए सुदामा ने बड़े ही धीमे स्वर में कहा।

अपने पति के मित्र से सुदामा की पत्नी को बड़े ही अनमोल उपहारों के मिलने की उम्मीद थी। अतः उसने आश्वासन दिया कि सुदामा के द्वारका पहुँचने, वहाँ कुछ दिन रुकने और वापस लौटने तक कुछ हफ्तों के लिए वह अकेले ही घर को सँभाल लेगी।

"परंतु मैं अपने मित्र से खाली हाथ कैसे मिल सकता हूँ?" सुदामा चिंतित होकर बोले। उनकी पत्नी के उदास चेहरे पर एक दुख भरी मुस्कान आ गई। कैसा बच्चों जैसा सोच रहे हैं आप। कभी किसी दरिद्र को एक राजा के लिए उपहार ले जाते किसी ने नहीं सुना होगा। क्या मुझे कृष्ण को एक राजा समझना चाहिए? क्या हम कभी मित्र नहीं थे? यह प्रश्न सुदामा स्वयं से पूछ रहे थे क्योंकि उनके लिए भी कृष्ण उनके इष्ट हैं और ईश्वर भक्त का प्रेम व स्नेह चाहते हैं न कि कर्मकांड और बहुमूल्य वस्तुओं का चढ़ावा।

"परंतु आप जो लेकर जाएँगे क्या वे उसे देखना भी चाहेंगे?" परेशान होकर उनकी पत्नी ने पूछा।

एकाएक सुदामा का चेहरा चमक उठा। मुझे स्मरण है कि जब भी मेरी माँ उनके लिए तंदूल भेजती थीं, तो वे उसे बड़े चाव से खाते थे। मेरी बात सुनो, मुट्ठी भर तंदूल मेरे प्रिय मित्र के लिए बना दो। निश्चय ही वे इसे बहुत पसंद करेंगे। "एक राजा के लिए तंदूल," पत्नी ने अचरज से कहा।

बिल्कुल इससे कुछ समय के लिए मेरे मित्र राज्य के बोझ को भूल जाएँगे और पुनः वन के किनारे स्थित उस आश्रम में व्यतीत किए गए मनोहारी दिनों में वापस पहुँच जाएँगे। उनकी पत्नी ने चिंता में एक गहरी साँस ली। उसके बावजूद वे तंदूल बनाने में व्यस्त हो गईं जो उनके पति ने ले जाने के लिए कहा था।

अगले दिन सुदामा द्वारका के लिए निकल पड़े। उन्हें सुध ही नहीं रही कि कैसे उन्होंने उफनती हुई नदी को पार किया, लंबे निर्जन रेगिस्तान के समान मैदान और पहाड़ियों की शृंखला को पार किया। कभी-कभी द्वारिका का मार्ग पूछने के अलावा उन्होंने पूरी यात्रा में किसी से भी बात नहीं की। वे कृष्ण के विचारों में खोए हुए थे, उनके हृदय की गति तीव्र होती जा रही थी, जैसे-जैसे द्वारिका निकट आ रही थी।

परंतु एक क्षण के लिए मन में आए नकारात्मक विचारों से उनके प्राण ही सूख गए। 'अगर कृष्ण ने उन्हें नहीं पहचाना तो क्या होगा?" उन्होंने स्वयं से पूछा। इस बात से क्या मतलब? वे स्वयं ही पूछते व स्वयं ही सांत्वना दे लेते, क्या यही पर्याप्त न होगा कि मैं उनकी एक झलक का दर्शन कर पाऊँ।

यदि मेरे मित्र द्वारिका में नहीं हों तब? उन्होंने पुनः स्वयं से प्रश्न किया। इस प्रश्न का उत्तर आसान नहीं था।

फिर भी उन्होंने स्वयं को समझाया "कम-से-कम मुझे उनका महल देखने का सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं कम-से-कम उनके महल के बाहर के दीवार पर अपना माथा टेककर कृष्ण को प्रणाम तो कर लूँ।'

अंततः एक संध्या को वे मनोरम द्वारका नगरी पहुँच ही गए। जो समुद्र की लहरों की गोद में बसा हुआ था। उन्होंने रात्रि एक सराय में व्यतीत की, परंतु पलकें भी नहीं झपकाए।

सूर्योदय होते ही वे कृष्ण के भव्य महल के बाहर पहुँच गए। कृष्ण की दृष्टि दूर से ही पड़ी। वे दौड़े-दौड़े सुदामा को लेने आए। रुक्मिणी, उनकी दासियाँ और अन्य सभी लोगों को बड़ा अचरज हुआ, जब उन्होंने कृष्ण को एक दरिद्र भिक्षुक के गले लगते देखा।

"मैं स्मरण हूँ तुम्हें, मेरे प्रिय सखा कृष्ण ने उत्साह से पूछा।" आपने पहचान लिया मुझे, मेरे मित्र। सुदामा ने उत्साह से पूछा और नेत्रों से अश्रु छलक गए।

कृष्ण ने अपने मित्र को अपने सिंहासन पर बैठा दिया। और स्वयं उनके बगल में बैठकर पंखा झलने लगे। सुदामा के द्वारा लाए हुए तंदूल को बड़े आनंद व स्वाद से ग्रहण किया। जो लोग अभी अचरज में थे, वे कृष्ण और सुदामा के निर्मल व प्रगाढ़ प्रेम को देखकर भाव विभोर थे। कृष्ण की यह विनम्रता एक उदाहरण थी। कुछ दिन, दोनों मित्र अपने आदरणीय गुरु ऋषि संदीपनी के पास जाकर रुके। परंतु सुदामा को अपने गाँव जल्दी वापस जाना पड़ा क्योंकि वहाँ उनकी पत्नी और बच्चे पता नहीं, उनके बिना किस प्रकार अपने दिन काट रहे होंगे।

कृष्ण ने अश्रुओं के साथ अपने मित्र को विदा किया। सुदामा भी द्वारका छोड़ते समय बड़े व्यथित थे।

वापस लौटने की यात्रा पहले आने की यात्रा से एकदम भिन्न थी क्योंकि अब वे कृष्ण के साथ बिताए समय के आनंद में मग्न होकर लौट रहे थे।

जैसे ही दूर से उनकी दृष्टि, गाँव के मंदिर के शिखर पर पड़ी, वे अपने स्वप्न की स्थिति से जागे।

अब सुदामा अपने घर के निकट थे। उनकी पत्नी व बच्चे निश्चय ही बड़ी उत्सुकता से उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। परंतु वे क्या भेंट लेकर आए उनके लिए? उनकी तंत्रिकाओं में एक ठंडी लहर-सी दौड़ गई। वे अपनी पत्नी



का सामना कैसे करेंगे? वे कैसे कृष्ण से सहायता माँगना भूल गए? उनके मित्र उन्हें कुछ आभूषण अथवा एक-दो झोले सोना भी खुशी-खुशी दे सकते थे। वह उनके परिवार के लिए बहुत अधिक होता। यह सत्य था कि कृष्ण के साथ समय बिताना, बहुत बड़े साम्राज्य को पाने से भी अधिक आनंदमय था। परंतु क्या उनकी पत्नी यह समझेगी?

अपनी इस भूल से उदास सुदामा, मुँह लटकाए धीरे-धीरे अपने घर पहुँचे। संध्या हो चुकी थी।

"पिताजी आ गए! पिताजी आ गए।" बच्चों का स्वर सुनाई दिया। उन्होंने उदास व घबराए हुए ऊपर देखा। वे एक भव्य कोठी के समक्ष खड़े हुए थे। उन्हें लगा कि निश्चय ही अपने गाँव के धोखे में किसी अन्य गाँव आ गए हैं। उनके गाँव में ऐसी कोई कोठी थी ही नहीं।

परंतु वे बच्चे कौन थे जो इस बीच उनको पकड़कर भीतर ले जा रहे थे? वे निश्चय ही उन्हीं के बच्चे थे! परंतु एक दरिद्र ब्राह्मण के बच्चे इतनी अच्छी पोशाक कैसे पहन सकते थे? और इस अपरिचित स्थान में उनके बच्चे क्या कर रहे थे?

उन्होंने उस कोठी को पुनः देखा। वह स्त्री जो मुस्कराते हुए उनका स्वागत करने बाहर आई, उनकी पत्नी नहीं थी। वे भौचक्के से खड़े थे। कुछ क्षण बाद उनका आश्चर्य आनंद व कृतज्ञता के भाव में बदल गया। उन्होंने अपने कष्टों के बारे में कृष्ण को कुछ भी नहीं बताया था। परंतु ईश्वर ही सब कुछ जान सकते हैं। उनकी छोटी-सी झोंपड़ी बड़ी-सी कोठी में परिवर्तित हो गई थी और उनकी खाली-रिक्त तिजोरी धन से भर गई थी, जब कृष्ण ने उन्हें गले लगाकर उनके हृदय को आनंद से भर दिया था।

सुदामा ने कृष्ण को प्रणाम किया।

22

कृपा का चमत्कार

कौन विश्वास करेगा कि एक निर्जन, भयानक वन, जिससे यात्री दूर ही रहते थे, वहाँ अब एक मनोरम सुंदर नगर बन गया है। लोक गायक नगर के गौरव का बखान बड़े ही उत्साह व आनंद से करते और इस प्रकार नगर के संस्थापक, पांडवों की प्रशंसा में लगे रहते।

जब भी दुर्योधन इंद्रप्रस्थ का नाम सुनता, उसकी छाती में तीर गड़ जाने जैसी पीड़ा उठती। भव्य उत्सव जिसमें युधिष्ठिर के राज्याभिषेक की घोषणा की गई, शिशुपाल का वध, ये सभी स्मृतियाँ कठोर और कड़वी थीं कि दुर्योधन के लिए इन्हें भुला पाना अत्यंत कठिन था। परंतु पांडवों की निरंतर उन्नति और प्रजा में उनके लिए सम्मान का भाव, दुर्योधन के हृदय में ईर्ष्या की ज्वाला को और भड़काता था। किसी भी खेल प्रतियोगिता या मनोरंजन में अब उसकी रुचि नहीं रह गई थी। कभी-कभी तो वह ऐसे बड़बड़ाता जैसे पागल हो।

"तुम्हें क्या कष्ट है, मेरे प्रिय भांजे?"

उसके दुष्ट व धूर्त मामा शकुनि ने उससे पूछा।

दुर्योधन ने शकुनि की ओर देखा। वह ऐसा व्यक्ति था जिससे सभी बड़े घृणा करते थे। कोई भी उसका मित्र नहीं बनना चाहता था, क्योंकि वह अपनी दुष्टता के लिए कुख्यात था।

परंतु दुर्योधन को उसकी ओर सदा ही एक खिंचाव-सा अनुभव होता था। शकुनि के नेत्रों में जो धूर्तता की चमक थी और उसके विचारों से जो विष निकल रहा था, दुर्योधन उसका लाभ क्यों न उठाता?

दुर्योधन ने अपने हृदय का कष्ट शकुनि के आगे खोल दिया। "जब भी मैं उन पाँचों भाइयों की हम पर विजय के बारे में सुनता हूँ तो मुझे बहुत पीड़ा

होती है, ऐसा लगता है जैसे मैं अपने जीवन का अंत कर दूँ," दुर्योधन ने अपनी व्यथा बताई।

शकुनि हँसने लगा, "मैं तुम्हारी बेचैनी समझता हूँ।" परंतु तुम चिंता मत करो, मैं जानता हूँ कि उन घमंडी पांडवों को कैसे ठीक करना है। यह किसी युद्ध या प्रतियोगिता द्वारा नहीं, बल्कि युधिष्ठिर की एकमात्र दुर्बलता का लाभ उठाकर किया जा सकता है।" उसने कहा।

"वो क्या है?"

"पासे, द्युतक्रीड़ा के प्रति उसका प्रेम," दुष्ट मामा ने अपनी आँखें चमकाते हुए कहा। "परंतु यदि गलत हो तो मुझे क्षमा करना कि मैं..."

"बिना किसी संकट के, इस खेल के खिलाड़ी? दुर्योधन उत्साहित हो गया, और मेरी ओर से आप खेल सकते हैं।" ताली बजाते हुए दुर्योधन बोला। इस सुझाव ने दुर्योधन को रोमांचित कर दिया। उसने मामा शकुनि को गले से लगा लिया।

यद्यपि राज्य के सभी विषयों में दुर्योधन ही निर्णय लेता था। उसके दृष्टिहीन वृद्ध पिता राजा धृतराष्ट्र ने कहा था कि आवश्यकता पड़ने पर किसी भी विषय पर वे सबसे अंत में निर्णय लेंगे। जब तक धृतराष्ट्र अपने बुद्धिमान मंत्री विदुर की सलाह लेते रहे, उन्होंने एक भी गलत निर्णय नहीं लिया। परंतु विदुर कुछ हस्तक्षेप करते, उससे पहले ही दुर्योधन और शकुनि धृतराष्ट्र से द्युतक्रीड़ा की प्रतियोगिता के लिए किसी प्रकार से अनुमति लेने में सफल रहे। निश्चय ही वृद्ध व दृष्टिहीन राजा अपने पुत्र को उसकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सभी संभव अवसर देना चाहता था।

युधिष्ठिर इस खेल में भाग लेने के लिए दो प्रकार से बाध्य थे। उन्हें आशंका थी कि खेल नियम विरुद्ध खेला जाएगा, परंतु सिद्धांतों के अनुसार, वे चुनौतियों से कभी भागते नहीं। इसके अलावा, इस प्रस्ताव के पीछे धृतराष्ट्र की स्वीकृति थी जिसे वे 'अनदेखा' नहीं कर सकते थे। और किसी भी दशा में वे इस बात का अनुमान भी नहीं लगा पाए कि इस खेल का क्या परिणाम हो सकता है। बहुत भारी संख्या में आमंत्रित अतिथियों, आगंतुकों, राजकुमारों और श्रेष्ठ व कुलीन जनों की उपस्थिति में खेल प्रारंभ किया गया। युधिष्ठिर, जिन्हें यह बताया गया था कि खेल उनके व दुर्योधन के मध्य है, अपने समक्ष शकुनि को देखकर चकित

रह गए। दुर्योधन के स्थान पर उसके प्रतिनिधि शकुनि को देखकर युधिष्ठिर को अच्छा नहीं लगा, परंतु सज्जनतावश उन्होंने विवाद नहीं किया।

खेल के प्रथम चरण में ही युधिष्ठिर ने अपना दुर्लभ रत्न से जड़ित हार बंधक रख दिया। खेल में पराजय मिलने पर उन्हें वह हार देना था। दुर्योधन ने उस एक बहुमूल्य रत्न के बदले बहुत सारे राजबंधक रखे।

सर्वप्रथम शकुनि ने पासा फेंका "मैं जीत गया!" वह दुष्ट चिल्लाने लगा। कौरव और उनके मित्र जोर-जोर से तालियाँ बजाने लगे। युधिष्ठिर जानते थे कि शकुनि ने कुटिलता से खेल जीता है, परंतु वे इसे सिद्ध नहीं कर पाए।

शकुनि विजय पर विजय प्राप्त कर रहे थे और युधिष्ठिर अपने विरोधी से एक-एक करके सारी वस्तुएँ हारते जा रहे थे। जब युधिष्ठिर अपना राजसिंहासन भी हार गए तब बहुत चिंतित हुए, परंतु प्रतियोगिता यहीं पर समाप्त नहीं हुई। वे एक के बाद एक अपने भाइयों को भी बंधक रखते गए और हारते गए। फिर उन्होंने स्वयं को बंधक रखा और स्वयं को भी हार गए। अर्थात सारे पांडव अब कौरवों के दास थे। इसके बाद अब बंधक रखने के लिए क्या बचा था उनके पास? युधिष्ठिर सकते में आ गए। "तुम द्रोपदी को बंधक क्यों नहीं रखते?" कौरवों के गुट में से किसी ने कहा। "क्यों नहीं!" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, जैसे कि वे उस अलौकिक खेल के सम्मोहन में डूबकर हुए फँस चुके थे। यह कहना कठिन है कि उस बुद्धिमान राजकुमार की मति में क्या अंधकार छा गया था, जब उन्होंने इस भयंकर सलाह को स्वीकृत किया अथवा एक दूरदर्शी की तरह उन्होंने देख लिया था कि एकमात्र यही उपाय धूर्त कौरवों को उनके अंत तक ले जा सकता है।

जैसा कि अनुमानित था, वे खेल का अंतिम चरण भी हार गए। दुर्योधन और उसके भाई आनंद से उछल पड़े। उनका पशुओं-सा अट्टहास ऐसा सुनाई दे रहा था, जैसे सियारों का झुंड हुंकार भर रहा हो। "अब तो द्रोपदी हमारी दासी है!" दुर्योधन ने अपने छोटे भाई दुःशासन को आदेश दिया।

दुःशासन महल में तेजी से गया और द्रोपदी के बाल पकड़ लिया।

"छोड़ दो मुझे, कृपा करो!" द्रोपदी रोने लगी परंतु व्यर्थ था। दुःशासन उन्हें दरबार तक घसीटते हुए ले आया।

मुझे ज्ञात है कि मुझे बंधक रखने से पहले युधिष्ठिर स्वयं को हार चुके थे। जब वे स्वयं ही दास बन चुके थे तो उन्हें मुझे बंधक रखने का क्या अधिकार था? मैं अपने बड़ों से न्याय माँगती हूँ। अपमानित राजकुमारी जोर-जोर से चीखने लगी।

परंतु सभी बड़े चुप थे, कुछ ने उनकी ओर से अपनी दृष्टि ही पलट ली तो कुछ बड़ी ही बेचैनी में अपना सिर झुकाए बैठे रहे। कौरवों ने प्रतिवाद किया कि जब युधिष्ठिर स्वयं दास बन गए, तब उनके अधिकार की हर वस्तु उनके स्वामी की हो गई। शब्दों में युधिष्ठिर, द्रोपदी को बंधक रखने के पहले ही द्रोपदी कौरवों की दासी हो चुकी थी।

उसके बाद तो कोई बहस नहीं बचती। दुःशासन ने अपनी क्रूर आँखें फाड़-फाड़कर और दाँतों को पीसते हुए द्रोपदी की साड़ी का कोना पकड़ा और खींचने लगा। उस दिन नर्क स्वयं कौरवों की राज्यसभा में उतर आया था। जैसे सभी की अंतरात्मा ही मर गई हो। कोई इस पशुता के विरुद्ध एक शब्द नहीं बोल रहा था।

भीम और अर्जुन क्रोध से दाँत पीस रहे थे। वे दुःशासन पर झपट पड़ते अगर युधिष्ठिर उन्हें नहीं रोकते।

परंतु युधिष्ठिर ने उन्हें क्यों रोका? क्या उन्हें इस चमत्कार का भान हो चुका था जो अब वहाँ होने वाला था। कुछ देर बाद दरबारियों को समझ आ गया कि सचमुच में कुछ चमत्कार घटित हो रहा है परंतु बहुत धीरे से!

जैसे ही द्रोपदी को यह आभास हुआ कि एक भी व्यक्ति उनकी सहायता के लिए आगे नहीं आ रहा था, उन्होंने दुखी हृदय से कृष्ण का ध्यान किया और प्रार्थना करते हुए निराश मन से दोनों हाथ ऊपर उठा लिए।

जब कौरव लालच भरी दृष्टि से उनके पूर्णतया अपमानित होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें बहुत ही गहन अनुभूति हुई। उन्होंने कृष्ण को सुदर्शन चक्र लिए हुए देखा जिससे अंतहीन तीव्र प्रकाश निकल रहा था और द्रोपदी को वस्त्र से ढक रहा था। जो द्रोपदी ने देखा, कोई और नहीं देख पाया, परंतु सभी आश्चर्यचकित बैठे हुए थे। दूसरी ओर दुःशासन लगातार क्रूरता से द्रोपदी के वस्त्र उतार रहा था, जो ऐसा लग रहा था पहले तो दुःशासन की हँसी, उपहास में बदल गई। परंतु जल्द ही वह उपहास भी चला गया। दुःशासन का चेहरा पीला पड़ गया। वह और



तेजी से वस्त्र खींचने लगा, परंतु उसके हाथ दुखने लगे। वहाँ पर उपस्थित सभी दर्शक मूक बने बैठे थे कि थोड़ी देर में उस विचित्र घटना को देखकर विस्मय से चिल्लाने लगे।

इस घटना से अनभिज्ञ और दैवी कृपा से सुरक्षित द्रोपदी बहुत शांत व गरिमामयी दिख रही थी। दुःशासन शक्तिहीन और दयनीय दिख रहा था। अचानक उसने वस्त्र खींचना छोड़ दिया और थक कर गिर गया, पराजय की कुंठा उसके चेहरे पर स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

राजा धृतराष्ट्र, इस विचित्र घटना को नहीं देख सकते थे, उन्हें सारा वृत्तांत बताया गया। अपने पुत्रों के प्रति संतोषप्रद होने के स्थान पर उन्हें यह समझ आया कि कितना बर्बरतापूर्ण व्यवहार था उनका। उन्होंने सब कुछ वहीं बंद करने का आदेश दिया, जो उन्हें बहुत पहले करना चाहिए था। उन्होंने दुर्योधन को बुरी तरह से फटकारा और द्रोपदी ने जो अत्याचार सहा, उसके बदले में उन्हें कोई एक वर माँगने के लिए कहा।

द्रोपदी ने पांडवों को दासत्व से मुक्त कराया। वृद्ध महाराज ने वह खेल और उसके परिणामों को अमान्य घोषित किया। पांडवों को द्रोपदी को साथ लेकर इंद्रप्रस्थ जाने की अनुमति दी गई।

परंतु इस घटना के परिणाम बहुत ही दूरगामी होने वाले थे। द्रोपदी कोई साधारण आत्मा नहीं थी, एक विशेष उद्देश्य लेकर आई थी। वह यज्ञ से उत्पन्न हुई थी और इसलिए उसका नाम यज्ञसेनी पड़ा— और जिन लोगों ने उसे बिना अपराध के अपमानित किया, उसका शाप उन लोगों को तहस-नहस कर सकता था।

वह अर्जुन द्वारा स्वयंवर में जीती गई थी। परंतु जब पांडव भाइयों ने अपनी माता कुंती से कहा कि वे एक अमूल्य पुरस्कार जीतकर आए हैं, तब माता ने बिना जाने हुए कि वह पुरस्कार क्या है, कह दिया कि पाँचों भाई आपस में बाँट लो! इस तरह से द्रोपदी पाँचों भाइयों की पत्नी कहलाई, परंतु भाग्य की यह व्यवस्था एक महान कार्य को पूरा करने के लिए थी। द्रोपदी में इतनी नियंत्रण शक्ति थी कि वे पाँचों पांडवों को एक समान महत्व देती थी। एकमात्र द्रोपदी का ही प्रभाव था कि पाँचों पांडवों में एकता थी और वे सौ कौरवों पर भारी पड़े। कौरवों का विनाश बहुत ही आवश्यक हो चुका था। वे

इतने दुष्ट थे कि उन्हें यदि छोड़ दिया जाता तो वे पृथ्वी की नैतिकता व श्रेष्ठता को अपनी संतुष्टि के लिए नष्ट कर देते।

जब दुःशासन द्रोपदी को बालों से पकड़कर घसीटते हुए ला रहा था, तभी द्रोपदी ने प्रतिज्ञा ली कि वे अपने केश तब तक नहीं बाँधेगी जब तक उसके केशों को दुष्ट दुःशासन के रक्त से धो नहीं लेती।

उसके अपमान को देखते हुए भीम ने यह प्रतिज्ञा ली कि वह तब तक शांत नहीं बैठेगा जब तक कि दुष्ट दुःशासन का सीना नहीं चीर देगा।



23

युद्ध के मँडराते काले बादल

कौरव पांडवों का हर संभावित तरीके से अपमान करना चाहते थे। इसलिए वह द्रोपदी को खींचकर दरबार ले आए। पर उनके इस गलत कार्य का परिणाम अलग और असंभावित था। कृष्ण की कृपा से द्रोपदी को यातना देने वालों का अपमान हुआ। वह जो थोड़े भी समझदार थे, वे यह समझ गए थे कि सच्चे भक्त की रक्षा भगवान हमेशा करते हैं। द्रोपदी की स्थिति से द्रवित होकर और लोगों की गहन आलोचना से डरकर वृद्ध राजा धृतराष्ट्र ने पांडवों को छोड़ दिया और युधिष्ठिर को वह सब लौटा दिया जो कौरवों ने द्युतक्रीड़ा में उनसे छीना था।

अतः यथार्थ में द्रोपदी ने ही उनको इस स्थिति से बचाया, पर यह बहुत दिनों तक नहीं रहा। चालाक दुर्योधन ने युधिष्ठिर को पुनः द्युतक्रीड़ा के लिए आमंत्रित किया और युधिष्ठिर ने पुनः इसकी सहमति दे दी, क्योंकि किसी भी चुनौती से पीछे हटना उनके सिद्धांतों के विपरीत था। यह बहादुर और दयालु लोगों की रीति थी जिसका वे पालन कर रहे थे।

उन्हीं साधनों से शकुनि ने उन्हें पुनः हरा दिया। इस बार पांडवों ने अपना राज्य ही नहीं खोया, बल्कि उन्हें 12 वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास भी मिला। सबसे बुरी बात यह थी कि उन्हें अंतिम एक वर्ष इस तरह व्यतीत करने थे कि उनके रहने के स्थान का किसी को पता न चले। यदि उनका पता चल गया, तो पुनः अगले 12 वर्ष के लिए वनवास दिया जाएगा।

पांडव द्रोपदी के साथ बाहर निकल गए। 12 वर्ष बहुत कठिनाई से जंगल में व्यतीत करने के बाद जैसे ही 13वाँ वर्ष आरंभ हुआ उन्होंने मत्स्य राज्य में राजा विराट के महल में अलग-अलग नामों से काम करना प्रारंभ किया।

राजा विराट से कौरव नाराज थे। एक दिन दो दिशाओं से दुर्योधन, कर्ण, भीष्म और द्रोण ने आक्रमण कर दिया।

राजा विराट इनका विरोध करने के लिए उतरे, पर उनके द्वारा बंदी बना लिए गए। पांडवों के लिए यह असंभव था कि वे उस राजा के अपमान के समय निष्क्रिय रहें जिसने उन्हें शरण दी है। अतः भीम युद्ध क्षेत्र में एक तरफ से प्रवेश कर गए और अर्जुन ने सेना के साथ दूसरी दिशा से प्रवेश किया। कौरव जो आसान विजय का सपना देख रहे थे, इतने प्रबल विरोध से चकित रह गए। शीघ्र ही भीम ने राजा विराट को मुक्त करा लिया। कौरव हार गए, उन्होंने राजा विराट के आधिपत्य वाले पशुओं के बड़े झुंड को पकड़ लिया था, पर जल्दबाजी में वे उन्हें छोड़कर भाग गए।

लेकिन हारे हुए और जिज्ञासु कौरवों को जल्दी ही यह पता चल गया कि वे राजा विराट के सेनापतियों से नहीं हारे। कुछ ही ऐसे बहादुर हैं जो भीष्म और द्रोण का सामना कर सकते हैं। ये कोई और नहीं, बल्कि पांडव बंधु भीम और अर्जुन हैं।

हालाँकि कौरव हार गए थे, पर वह इस बात से खुश थे कि अज्ञातवास में उन्होंने पांडवों का पता लगा लिया। उनकी अचानक मिली उपस्थिति उनको पुनः बाहर साल के लिए वनवास में भेज सकती थी।

पर यह युद्ध तब हुआ, जब 13वाँ वर्ष समाप्त होने को था। पांडवों को अपनी पहचान बताने में कोई नुकसान नहीं था। राजा विराट बहुत खुश थे। यह समाचार बहुत दूर तक फैल गया। पांडवों के मित्र प्रसन्न होकर उनसे मिलने आए।

पर उनका भविष्य अनिश्चित था। क्या दुर्योधन जो 13 साल से पूरे राज्य का राजा था वह विभाजन या बँटवारे के लिए तैयार होगा?

समझदारी की बात यह थी कि युधिष्ठिर ने सोचा कि वे युद्ध के लिए तैयार रहें, क्योंकि युद्ध को टाला नहीं जा सकता। युधिष्ठिर के मन में जैसे ही यह विचार आया, वह अपने संभावित मित्रों के बारे में सोचने लगे।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि उनके मन में सर्वप्रथम कृष्ण का नाम आया, जोकि सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण बलशाली स्तंभ हैं। तुरंत ही उन्होंने अर्जुन को द्वारका कृष्ण से सहयोग माँगने को भेजा।

अर्जुन कृष्ण के महल में प्रवेश कर गए किसी ने उन्हें नहीं रोका, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति कृष्ण-अर्जुन के प्रेम से परिचित था। हालाँकि दुर्योधन को यह सूचना दी गई कि कृष्ण निद्रा में हैं, पर कुछ समय पूर्व वह उनके कक्ष में प्रवेश कर गया।

अर्जुन दुखी थे। वह यह आशा कर रहे थे कि कृष्ण ने दुर्योधन को सहयोग का आश्वासन न दिया हो।

अर्जुन ने कक्ष में प्रवेश करते ही देखा कि दुर्योधन रत्न जड़ित आसन पर कृष्ण के सिरहाने बैठा हुआ था व कृष्ण के उठने की प्रतीक्षा कर रहा था।

अर्जुन शांतिपूर्वक कृष्ण के चरणों की ओर बैठ गए।

जैसे ही कृष्ण जागे, उनकी नजर सर्वप्रथम अर्जुन पर पड़ी। उसके बाद उन्होंने दुर्योधन को देखा। दोनों ही युद्ध में सहयोग के लिए कृष्ण के आश्वासन हेतु आए थे।

"मैं पहले आया अतः आपके सहयोग का मैं पहला अधिकारी हूँ।" दुर्योधन ने कहा।

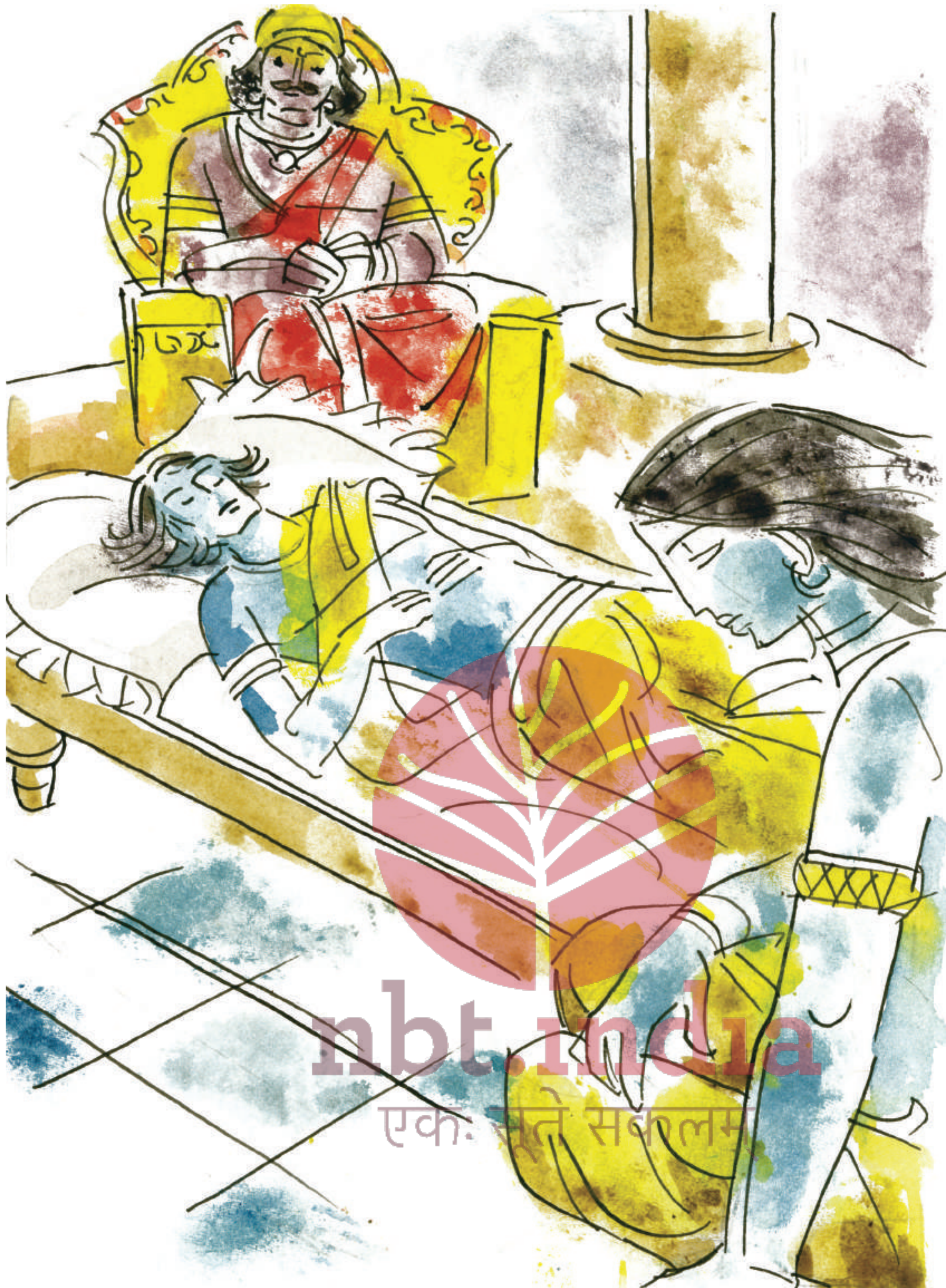
"शायद, पर मैंने अर्जुन को पहले देखा, अतः नैतिक रूप मैं पहले उसकी प्रार्थना सुनने के लिए प्रतिबद्ध हूँ। पर मेरी यह बात सुन लो कि मैं व्यक्तिगत रूप से युद्ध में भाग नहीं लूँगा। ज्यादा-से-ज्यादा मैं बिना शस्त्र उठाए तुममें से किसी एक की सहायता कर सकता हूँ। जैसा तुम लोग जानते हो, मेरे पास नारायणी सेना नाम की एक शक्तिशाली सेना है। यदि मैं एक पक्ष के साथ जाऊँगा, तो मेरी सेना दूसरे पक्ष में जाएगी। क्योंकि अर्जुन छोटा है तो उसको मेरी सेना और मेरे बीच में चुनने का अधिकार मिलना चाहिए।" कृष्ण ने शांत भाव से कहा।

दुर्योधन कुछ कहे, उसके पहले ही अर्जुन ने अपनी पसंद आगे रखी "कृष्ण मुझे आपकी सेना की आवश्यकता नहीं है, मुझे आपकी आवश्यकता है। कृपया मुझे सहयोग दें।"

"इसके बावजूद कि मैं युद्ध नहीं करूँगा?"

"हाँ! मेरे मित्र, फिर भी जबकि आप युद्ध नहीं करेंगे!" अर्जुन ने कहा।

दुर्योधन का मुख खुशी से चमकने लगा। वह भी यही चाहता था शस्त्रहीन मित्र जो युद्ध में लड़ने के लिए तैयार नहीं है किस काम का? अर्जुन कितना मूर्ख है कि उसने कृष्ण की सेना नहीं चुनी!



कृष्ण ने दुर्योधन को देखा, "कृष्ण मेरे लिए यह उपयुक्त है, मैं आपकी सेना से संतुष्ट हूँ!" उसने कहा।

"मैं इस बात से खुश हूँ कि तुम दोनों ही संतुष्ट हो!" कृष्ण ने कहा।

पर न ही युधिष्ठिर और न ही उनके भाई राज्य लेने को आतुर थे, वे शांतिपूर्ण जीवन चाहते थे। वह अपने जीवनयापन के लिए सिर्फ पाँच गाँव ही चाहते थे। यह प्रतीकात्मक रूप से उनके राज करने का अधिकार भी दर्शाता।

उन्होंने हस्तिनापुर दूत भेजने का निश्चय किया। स्वाभाविक रूप से यह काम कृष्ण को दिया गया।

धृतराष्ट्र ने महान दूत के लिए राजसी स्वागत की तैयारी का आदेश दिया। बड़े-बड़े द्वार बनाए गए और संगीतकार इस अतिथि के स्वागत में वाद्य यंत्र बजाने लगे। कृष्ण ने इस पर बहुत ध्यान नहीं दिया। वह बहुत गंभीर थे, क्योंकि उन्हें अपनी इस योजना की सफलता पर संदेह था।

वह और गंभीर हो जाते, यदि उन्हें दुर्योधन की गंदी योजना का थोड़ा भी भान होता। वह कृष्ण को बंदी बनाकर पांडवों को बड़ा आघात देना चाहता था। वह यह नहीं जानता था कि कृष्ण बुरी-से-बुरी स्थिति के लिए तैयार थे। उनकी सेना हस्तिनापुर से कुछ ही दूरी पर जंगल में उपस्थित थी। उनके साथ उनके सुरक्षाकर्मी थे जो कि कृष्ण के जरा से अपमान पर सेना को संकेत दे सकते थे।

दुर्योधन की इस योजना को राजा धृतराष्ट्र की सहमति नहीं मिली।

जिस बात का कृष्ण को डर था वही हुआ। कौरव और पांडवों के बीच में शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को दुर्योधन के द्वारा अस्वीकार कर दिया। "वह पाँच गाँव चाहते हैं क्या? मैं उन्हें सूई की नोंक के बराबर भी जमीन देने को तैयार नहीं हूँ।" यह दुर्योधन के इस योजना पर अंतिम शब्द थे।

इससे टकराव निश्चित हो गया और महाभारत युद्ध की नींव पड़ी।

24

गीता का संदेश

हस्तिनापुर या इंद्रप्रस्थ के पास एक बड़ा घास का मैदान था। जहाँ कुछ समय पहले परशुराम ने धार्मिक अनुष्ठान किए थे। राजा कुरु जो कौरव और पांडव दोनों के ही शीर्षस्थ पूर्वज थे, ने एक बड़े यज्ञ का आयोजन किया था। संतों के द्वारा उनके नाम से प्रसिद्ध स्थान कुरुक्षेत्र को 'धर्मक्षेत्र' भी कहा जाता था। ऐसा माना जाता था कि इस स्थान पर युद्ध में मारा गया हर व्यक्ति स्वर्ग ही जाएगा।

इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं था कि दोनों गुटों के द्वारा इसे युद्धक्षेत्र के रूप में चुना गया।

दोनों ही गुट इस महत्वपूर्ण लड़ाई के लिए तैयारी करने लगे। कृष्ण की सलाह पर युधिष्ठिर ने पांचाल के राजकुमार दृष्टद्युम्न को पांडव सेना का मुख्य सेनापति चुना।

महान भीष्म को कौरव सेना के सेनापति का प्रभार सौंपा गया। लेकिन इस संत राजकुमार ने यह घोषणा की कि वह शत्रु सेना में आतंक तो मचाएँगे, पर किसी भी पांडव भाई का वध नहीं करेंगे।

वृहद भारत उपमहादेश जो उस समय भारतवर्ष और प्रायः 'जंबूद्वीप' के नाम से जाना जाता था, वह कई राज्यों से मिलकर बना था। सभी राजा पूरे देश को मातृभूमि मानते थे और अधिकांशतः किसी एक पर भी विपदा आने पर सभी एक साथ लड़ते थे। कौरव और पांडव के बीच के युद्ध का प्रभाव उन सब पर किसी-न-किसी तरीके से पड़ने वाला था। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि कई राजा अपनी सेना के साथ कुरुक्षेत्र पहुँचकर अपने रिश्तों के आधार पर कोई-न-कोई गुट या दल से जुड़ने वाले थे। रंग-बिरंगे झंडों वाले उनके रथ, बड़े-बड़े हाथी और मजबूत घोड़ों के साथ हजारों सैनिकों की धूल से आसमान ढँका हुआ था।

दोनों ही ओर के सेनापति इस बात पर सहमत थे कि ऐसे किसी भी शत्रु को नुकसान नहीं पहुँचाया जाएगा, जिसका शस्त्र गिर गया हो या कोई युद्ध छोड़ना चाहता हो। सूर्यास्त के साथ ही युद्ध रोक दिया जाएगा। इसके बाद शत्रु अगले दिन का युद्ध शुरू होने तक एक-दूसरे से सामान्य रिश्ते रख सकते थे। युद्ध का दिन आ गया। दोनों ही पक्ष आमने-सामने खड़े हुए। दुंदुभी और शंख की आवाजों से धरती हिल गई। युधिष्ठिर रथ से नीचे उतरे और अपने शस्त्रों को नीचे रख और कवच को उतार कर कौरवों की ओर बढ़े।

उनके भाई यह देखकर आश्चर्यचकित होने के साथ ही साथ विचलित भी हुए। वे भी अपने रथ से उतरकर उनके पास पहुँचे "इस समय शत्रु से आप किस तरह की बात करने जा रहे हैं?" उन्होंने उत्तेजित होकर पूछा।

युधिष्ठिर ने कोई उत्तर नहीं दिया, पर कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा, "चिंता न करें। युधिष्ठिर आत्मसमर्पण के लिए नहीं, बल्कि वह अपनी विजय को सुनिश्चित करने जा रहे हैं।"

सर्वप्रथम युधिष्ठिर ने भीष्म के पास पहुँचकर सिर झुकाकर आशीर्वाद लिया "पुत्र तुम बुद्धिमान हो। जाओ युद्ध करो। सत्य की जीत होगी," भीष्म ने कहा।

एक-एक करके युधिष्ठिर अपने गुरु द्रोण और अपने पूजनीय कृपाचार्य और शल्य से मिले। उन्होंने सभी का आशीर्वाद प्राप्त किया और रथ की ओर लौट आए।

यह न सिर्फ विनम्रता का उदाहरण था, बल्कि एक अलग तरह की विजय थी। यदि युधिष्ठिर ने बड़ों के प्रति यह शिष्टता नहीं दिखाई होती तो शायद वे उनके प्रति कठोर होते और साथ ही साथ शाप भी देते। यह उनके लिए दुर्भाग्य का कारण होता। हालाँकि वे उनके विरुद्ध लड़ रहे थे, पर उनके मन में युधिष्ठिर के प्रति सद्भावना थी।

कृष्ण अर्जुन के सामने रथ की लगाम सँभाले बैठे हुए थे। अर्जुन ने उनसे रथ को दोनों दलों के बीच में स्थित जगह पर ले जाने की प्रार्थना की, जिससे वह उनको देख सकें जिनके साथ उन्हें युद्ध करना है। अचानक अर्जुन ने कृष्ण को रुकने के लिए कहा और दुखी स्वर में बोले "हे कृष्ण! मैं अपने पूजनीय और भाइयों से क्यों युद्ध करूँ? पुरस्कारस्वरूप मिलने वाला रक्तपात मुझे कोई खुशी न दे करके दुख में डुबो देगा।"

कृष्ण ने अर्जुन से कहा अवसाद और खुशी साधारण मनुष्य की निशानी है। जबकि अर्जुन तुमसे असाधारण क्षमताओं की उम्मीद है। तुम्हें भावनाओं से ऊपर उठकर युद्ध करना होगा, क्योंकि यह न्याय और सत्य की जीत के लिए लड़ाई है। पर यह बात अकेले ही शस्त्र उठाने की प्रेरणा के लिए पर्याप्त नहीं थी। कृष्ण ने समझाया कि इस अवसाद की जड़ उसका अहंकार है। उसे इसको जीतना होगा। उसे यह युद्ध व्यक्तिगत संतोष या खुशी के लिए नहीं लड़ना है। इसके पीछे दैवीय शक्तियाँ काम कर रही हैं और वह उनकी इस योजना को सफल बनाने में अपनी सेवाएँ दे सकते हैं। यदि तुम ऐसा कर पाए तो यह तुम्हारे लिए मायने नहीं रखता कि तुमने क्या कार्य किया। तुम्हारे द्वारा किया गया कोई भी कार्य समान महत्व का होगा।

सामान्य लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कार्य करते हैं। यदि मिलने वाला फल उनकी मेहनत के बराबर होता है तो वे खुश होते हैं और ऐसा नहीं होने पर वह दुखी हो जाते हैं। पर वे व्यक्ति जो दैवीय शक्तियों के लिए कार्य करते हैं, वे हमेशा शांत और संतुष्ट होते हैं। सफलता और असफलता उन्हें प्रभावित नहीं करती, क्योंकि वे हर कार्य के फलस्वरूप मिलने वाले फल को भगवान पर छोड़ देते हैं।

अहिंसा एक उच्च आदर्श है, पर जब तक हिंसा और बुराई की शक्तियाँ सक्रिय हैं, तब तक उनसे निपटने के लिए बल की आवश्यकता होगी। पर वह व्यक्ति जो दैवीय शक्तियों के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं, वे अपने मन में हिंसा और विद्वेष के भाव नहीं पनपने देते। वे वही कार्य करते हैं, जो उनकी आत्मा कहती है। वे मन में बिना हिंसा की भावना रखे अपनी बहादुरी और ताकत का उपयोग करते हैं।

कृष्ण ने अर्जुन को यह सच्चाई भी बताई कि मृत्यु जीवन का अंत नहीं है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र उतार करके नए धारण करता है, आत्मा भी एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। आत्मा अमर है। जो व्यक्ति अपनी आत्मा को जानता है, वह यह भी जानता है कि वह अमर है।

अर्जुन ने कृष्ण को अखिल ब्रह्मांडीय विराट स्वरूप दिखाया। आश्चर्यचकित अर्जुन ने कृष्ण को निर्माण और विध्वंस की शक्ति के रूप में देखा। वह हजारों



सूर्य के जैसे प्रकाशित थे। ग्रह अस्तित्व में आ रहे थे और चारों तरफ घूम करके उन्हीं में समाहित हो रहे थे। वे असंख्य और अनंत थे।

अर्जुन को यह समझ में आया कि बुद्धिमानी अपने सीमित विचार से ऊपर उठने और अपने आप को सर्वोच्च सत्ता के सामने समर्पण करने में ही है। जो कोई यह करने में सफल होता है वह अपने कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाता है। वह अपने पापों के कारण कष्ट नहीं भोगता, क्योंकि वह ऐसे कोई पाप करता ही नहीं है।

कृष्ण ने अर्जुन से जो भी कहा, वह गीता के रूप में प्रसिद्ध हुआ और सत्य की खोज करने वाला ग्रंथ माना गया।

अर्जुन इस संवाद के बाद आत्मप्रकाशित और प्रेरित होकर बाहर आए।

शंख और दुंदुभी की आवाज दोनों पक्षों से पुनः आने लगी और महाभारत काल की शुरुआत हुई।



25

महाभारत का महान युद्ध

युद्ध का प्रारंभ पांडवों की ओर से सबसे आगे भीम और कौरवों की ओर सबसे आगे भीष्म के नेतृत्व से हुआ। उनके पीछे कई महान योद्धा राजा अपने हजारों सैनिकों के साथ उपस्थित थे।

राजाओं और सेनापतियों के लिए यह नियम था कि वह शत्रु पक्ष के अपने समान पद वाले व्यक्तियों से ही लड़ेंगे, हालाँकि यह नियम कई बार तोड़ा गया।

जल्दी ही युद्ध भयंकर और विकराल हो गया। दुंदुभी और ढोलों की आवाजों से भी ज्यादा तेज युद्धरत सैनिकों की आवाजें आने लगीं। यह युद्ध 18 दिन तक चला। प्रतिदिन अनगिनत सैनिक, हाथी और घोड़े मारे गए। हालाँकि शुरू में सूर्यास्त के बाद युद्ध रुक जाता था, पर युद्ध समाप्त होते-होते यह नियम नकार दिया गया। क्योंकि हर पक्ष दूसरे पक्ष का शीघ्रता से अंत करना चाहता था।

युद्ध में मुख्य शस्त्र– तीर-कमान, भाला, तलवार और गदा थे। पर जहाँ तक मुख्य योद्धाओं की बात थी, वह इनका प्रयोग बाह्य साधनों के रूप में कर रहे थे। वह अपनी तपस्या के द्वारा प्राप्त या वरदान के रूप में मिली अतींद्रिय शक्तियों का प्रयोग कर रहे थे। वह अपनी इन शक्तियों का प्रयोग बाणों के द्वारा कर रहे थे। दो बाण दिखने में एक समान होते थे, पर प्रभाव में अलग-अलग।

अत्यंत सुगमता से कृष्ण अर्जुन के रथ को युद्धस्थल पर ले गए। अर्जुन को अपनी योजना की चिंता नहीं थी, क्योंकि उनके सारथी अधिक जानते थे। रथ एक जगह से दूसरी जगह अर्जुन को अधिकतम लाभ देने के लिए दौड़ता रहा।

कौरवों की सेना के लिए कृष्ण का रथ चलाना और अर्जुन के बाण दुखदायी दृश्य थे। सैनिक रथ को रोकने की बजाय रथ के रास्ते से घबराकर इधर-उधर भाग रहे थे। कौरवों के कुछ सेना नायकों ने सोचा कि सबसे अच्छा है अर्जुन को

कृष्ण की सलाह से वंचित रखा जाए। यह तभी संभव था जब कृष्ण का संहार किया जाए। नायकों में से एक राजा श्रुतयुद्ध जिसके पास शक्तिशाली गदा था, उसने यह करने की कोशिश की। यह भूलते हुए कि एक सारथी की हत्या करना अपराध है, उसने कृष्ण के ऊपर अपनी गदा फेंक दी।

चमकती हुई गदा कृष्ण की ओर तेजी से बढ़ी, पर वह उनको बिना छुए अचानक दुगुनी गति से वापस लौटी और फेंकने वाले से जा टकराई और राजा श्रुतयुद्ध की मृत्यु हो गई।

कृष्ण अर्जुन को भीष्म के सामने ले आए। हालाँकि भीष्म ने अर्जुन को मारने की बहुत कोशिश की, पर उन्होंने कोई भी शस्त्र अर्जुन पर सीधे नहीं चलाया, क्योंकि उन्होंने प्रण किया था वे किसी भी पांडव का वध नहीं करेंगे। लेकिन जिस सहजता और गति से भीष्म पांडव सेना का विनाश कर रहे थे, वह पांडवों के लिए चिंताजनक था। एक समय ऐसा लगा कि कौरव पांडवों के ऊपर आसानी से विजय प्राप्त कर लेंगे।

ऐसा लगा कि कृष्ण यह भूल गए कि वह युद्ध में सारथी के रूप में भाग ले रहे हैं। वह रथ से कूद पड़े और फौरन ही उनका अलौकिक शस्त्र सुदर्शन चक्र उनके हाथ में प्रकट हो गया।

यह दृश्य देखकर भीष्म डरने या चिंता करने के बजाय प्रसन्न हुए। "आओ कृष्ण चलो युद्ध करें। इससे ज्यादा और भाग्यशाली नहीं हो सकता कि मैं तुम्हारे द्वारा मृत्यु को प्राप्त होऊँ।" भीष्म ने हँसते हुए कहा।

पर अर्जुन कूदे और दौड़कर कृष्ण को पकड़कर उन्हें याद दिलाया कि उन्होंने युद्ध न करने का प्रण लिया है। साथ ही साथ भीष्म को न मारने की भी प्रतिज्ञा की है। कृष्ण सँभले और पुनः रथ में जाकर बैठ गए।

हालाँकि हर अवस्था में कृष्ण की सहायता से पांडवों की विजय का मार्ग प्रशस्त होता गया। कौरवों के समर्थक भी दृढ़प्रतिज्ञ थे, क्योंकि पांडवों से सेना नायकों की संख्या इनकी ज्यादा थी। महान भीष्म के अलावा कौरवों के साथ द्रोण, जिन्होंने दोनों ही पक्षों के राजकुमारों को युद्ध कला सिखाई थी, बुद्धिमान और बहादुर कर्ण, मद्र राज्य के महान राजा शल्य और जयद्रथ कौरवों की सेना में शामिल थे।

कौरवों का सबसे अंतिम साथी जयद्रथ बहुत शातिर और बलवान राजा था। एक बार जब पांडव निर्वासन में जंगल में रह रहे थे, तब द्रोपदी को अकेला पाकर वह उन्हें खींच ले गया था। भाग्य से पांडव जल्दी ही वापस आए और भीम व अर्जुन ने अपहरणकर्ता का पीछा करके उसे छुड़ा लिया। भीम उसे उसी समय मार देता पर दयालु युधिष्ठिर की मध्यस्थता के कारण उसे छोड़ना पड़ा। लेकिन उसके पहले भीम ने उसके आधे बाल काटकर चेहरा काला कर दिया था।

जयद्रथ अपना यह अपमान नहीं भूला था। वह कौरवों के लिए बदले की भावना के साथ लड़ रहा था।

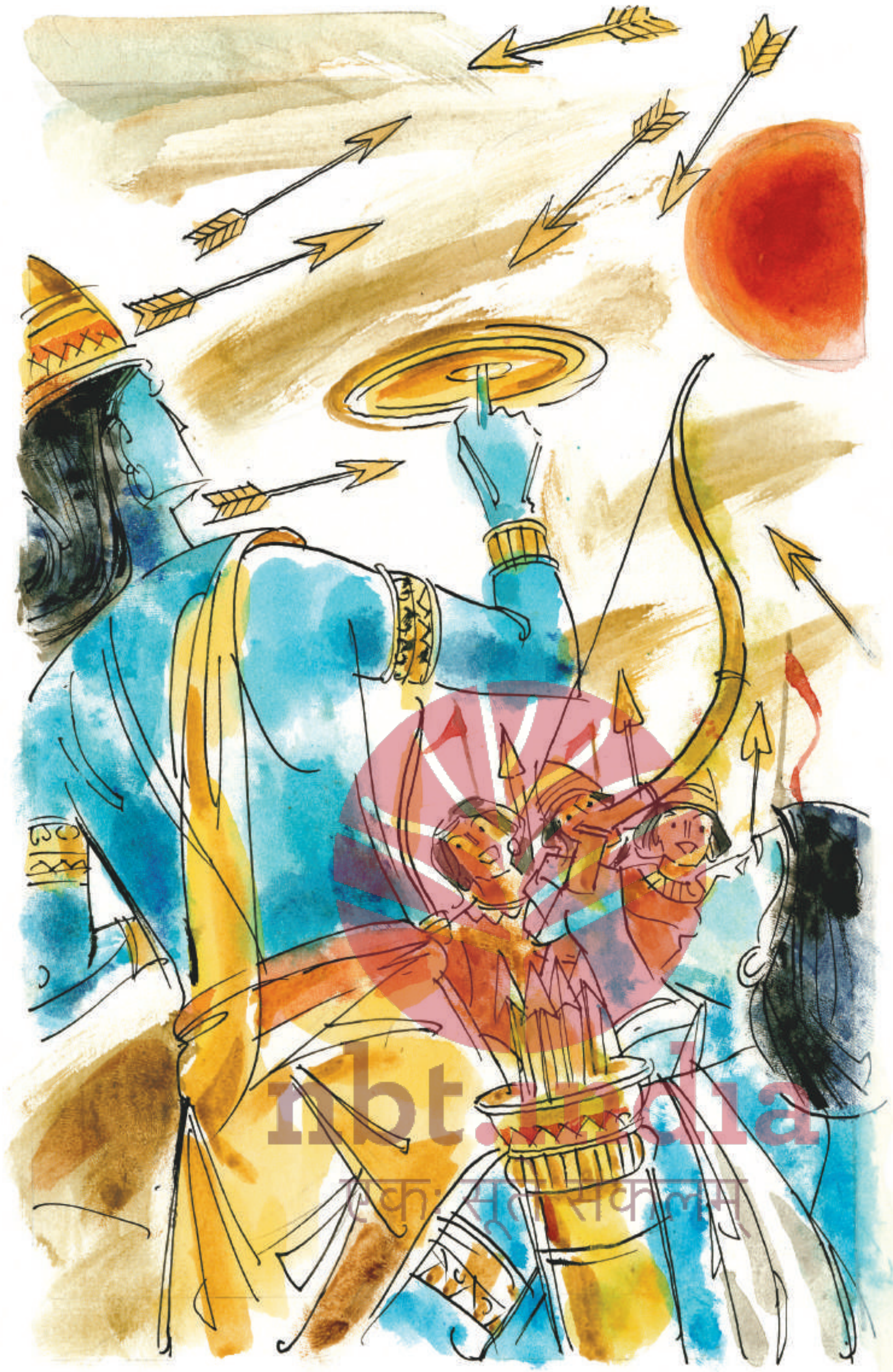
युद्ध के 13वें दिन कौरवों के नायकों में सबसे अधिक अनुभवी गुरु द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कर्ण ने मिलकर अर्जुन के युवा पुत्र अभिमन्यु को मारने की योजना बनाई। यह बहुत ही क्रूर कार्य था, क्योंकि सभी अनुभवी योद्धा अकेले अभिमन्यु पर टूट पड़े थे। पर आश्चर्यजनक रूप से अभिमन्यु उन सभी से एक साथ बहादुरी से लड़ा। पर उन लोगों ने उसे चक्रव्यूह में फँसाया। यदि पांडवों की थोड़ी भी सहायता उसे मिल जाती तो वह शत्रुओं को शर्मिंदा करके बाहर आ जाता। पर वह जयद्रथ था, जिसने इस चक्रव्यूह के प्रवेश द्वार पर खड़े रहकर युधिष्ठिर और भीम को बाहर रखा।

अभिमन्यु बहुत बहादुरी से लड़ा। जब उसके सभी शस्त्र समाप्त हो गए और रथ टूट गया तो उसने एक पहिया उठाकर अपनी रक्षा की। हालाँकि अंत में कौरव के सेनानायक उसे मारने में सफल रहे, लेकिन वह बहादुरी न होकर क्रूरता थी।

सभी पांडव गहरे अवसाद में चले गए। जब अर्जुन इससे बाहर आए तब वह बदले की आग में जल रहे थे। “कल सूर्यास्त के पहले या तो मैं जयद्रथ को मारूँगा या मैं अग्निस्नान करूँगा,” उसने गरजती आवाज में घोषणा की।

अर्जुन की इस शपथ ने कौरव सेना विशेष करके जयद्रथ को हिला दिया। द्रोण और दुर्योधन ने उसे आश्वस्त किया कि वे अर्जुन को उसके पास नहीं आने देंगे।

अगले दिन उन्होंने जयद्रथ को सेनानायकों के एक मजबूत घेरे के अंदर रखा और खुद उसके बाहर खड़े हो गए। अर्जुन उन पर तूफान की तरह टूट पड़े। वे उस घेरे को तोड़ना चाहते थे पर यह आसान नहीं था। कौरव जी-जान से उसको जयद्रथ तक पहुँचने से रोक रहे थे। इसके पीछे मित्र की रक्षा के अलावा एक बड़ा



कारण और था। वे जानते थे कि अर्जुन कभी शपथ नहीं तोड़ेगा। यदि सूर्यास्त तक जयद्रथ की मृत्यु नहीं हुई तो वह अग्निस्नान कर लेगा। यह कौरवों की सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।

सूरज अस्त होने वाला था और अर्जुन बहुत ही बेकरार दिख रहे थे, जबकि कौरव प्रसन्न हो रहे थे। जैसे-जैसे समय बीत रहा था, दोनों ही प्रतिक्रियाएँ विपरीत दलों में स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

यदि बुराई पर अच्छाई की जीत सुनिश्चित करनी थी, तो कृष्ण के कार्य करने का समय आ गया था।

जहाँ कौरव युद्ध में व्यस्त थे, अचानक आकाश में अँधेरा छा गया। जैसे ही उन्हें यह अहसास हुआ तो उनकी खुशी छुपाए न छिपी। "सूर्यास्त हो गया और अर्जुन को अपने आप को त्यागना होगा," वे चिल्लाए। जयद्रथ घेरे से बाहर आकर आकाश की ओर देखते हुए राक्षसों जैसे हँसने लगा।

लेकिन तभी अचानक ही अँधेरा समाप्त हो गया और सूर्य आसमान में दिखने लगा। अर्जुन ने पहले ही अपना धनुष-बाण उठा लिया था और बाण उड़ने को तैयार था, पर कृष्ण ने उन्हें एक अन्य बड़े खतरे से सावधान किया। जयद्रथ के पिता को मिले वरदान के अनुसार जो जयद्रथ के सिर को जमीन पर फेंकेगा तुरंत उसका अपना सिर भी कट जाएगा।

कृष्ण के निर्देशों का पालन करते हुए अर्जुन ने इस तरह बाण चलाया कि उसने जयद्रथ के रक्षकों को पार करके उसके सिर को अलग कर दिया और इसके बाद एक चमत्कार हुआ। वह उस अलग हुए सिर को बिजली की गति से दूर जंगल में ले जाकर अकेले में बैठे जयद्रथ के पिता की गोद में गिरा दिया। बिना कुछ जाने वह खड़े हो गए और जयद्रथ का सिर जमीन पर गिर पड़ा और साथ ही साथ उसके पिता का सिर भी नीचे गिर पड़ा।

26

महादैत्य का युद्ध में प्रवेश

युद्ध के 14वें दिन कौरवों के लिए एक बड़ा झटका और आश्चर्य इंतजार कर रहा था। यह एक असंभावित स्थान से मिला।

भीम ने एक बार हिडिंबा नाम की राक्षसी से विवाह किया था, उनका पुत्र घटोत्कच जो माता के साथ जंगल में रहता था, में यह जानने की अतींद्रिय क्षमता थी कि कब उसके पिता ने उसके बारे में सोचा या उन्हें उसकी सहायता की आवश्यकता है।

जैसे ही भीम ने उसकी सहायता की इच्छा की, वह जल्द ही कुरुक्षेत्र पहुँचकर युद्ध स्थल की ओर लपका।

कद में बड़ा होने के कारण उसका सिर बड़े हाथी के आकार का था। आँखें गुस्से से लाल थी और मूँछ बड़ी व भूरे रंग की थी। उसके दाँत फावड़े जैसे थे, उसका रथ 100 घोड़े खींच रहे थे, जो भालू की चमड़ी से ढँके हुए थे। एक भयंकर आकृति वाला गिद्ध इसके ऊपर बैठा हुआ था।

कौरव सैनिक इस अजनबी को देखकर डर से काँपने लगे। लेकिन अभी उनको घटोत्कच की शक्ति का अंदाजा नहीं था, जो उनकी सोच से परे था। उस युवा दैत्य में अपनी माँ की जाति का कठोर स्वभाव और पिता की ताकत एवं बुद्धिमानी समाहित थे। इसके अलावा बुजुर्ग दैत्यों ने उसे कई जादू और अलौकिक शक्तियों को सौंपा था।

वह कौरव की सेना पर सौ बादलों की गर्जना के बराबर दहाड़ते हुए टूट पड़ा। उसने अपनी अलौकिक शक्तियों के द्वारा दर्जनों शेर, चीता, साँप, बाज और पिशाच का निर्माण किया जो उन पर आक्रमण के लिए तैयार थे।



यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन सब बातों ने एक असाधारण स्थिति उत्पन्न कर दी। सैनिक मनुष्यों से लड़ाई करने के तो आदी थे, पर जंगली जानवर और चिड़ियों से नहीं। वे चिल्लाए और अपनी जान बचाकर भागे।

पर वह जो घटोत्कच ने बनाया था, वो भ्रम नहीं था। यह उसकी अजीब क्षमता से निर्मित आकृतियाँ थीं, जो वास्तविक थीं। उसने कौरव सेना में आतंक मचा दिया। सेना नायक और दल नायक दर्जनों की संख्या में मारे गए।

"कर्ण यदि कभी तुम्हारी विशेष हस्तक्षेप की आवश्यकता थी तो वह क्षण अब है। किसी भी तरह से इस समस्या का अंत करो नहीं तो हमारा अंत होगा। जरा सोचो कि हमारा क्या अपमान होगा यदि हम अपने आप को इस युवा अर्द्धराक्षस से नहीं बचा सके तो," कौरव सेना के सेना नायकों ने बलवान कर्ण से कहा।

कर्ण एक क्षण के लिए हिचके। उन्हें यह अहसास हुआ कि कोई भी साधारण या असाधारण शस्त्र जो इन नायकों के पास है, घटोत्कच को नहीं मार सकता। सिर्फ एक ही शस्त्र 'वैजंती' जिसमें इंद्र की शक्तियाँ समाहित हैं, इस आतंक का अंत कर सकता है। पर इसका प्रयोग एक ही बार किया जा सकता है। क्या वह उसका उपयोग करें? उसके सामने यह महत्वपूर्ण प्रश्न था।

"कर्ण! अब हमारे पास वक्त नहीं है, इस स्थिति से बचने के लिए जो कर सकते हो, करो।" उसके साथी पुनः चिल्लाए।

कर्ण ने जल्दी से दैत्य द्वारा किए गए विनाश को देखा। उसने अपनी आँखें बंद की और बाण निकाला एवं इंद्र की शक्तियों का आह्वान किया और घटोत्कच पर प्रहार कर दिया।

जैसे ही घटोत्कच ने बाण को अपनी तरफ आते देखा, वह समझ गया कि उसका अंत निकट है। तुरंत ही उसने अपनी एक और चमत्कारिक शक्ति का प्रयोग किया। जैसे कर्ण का बाण उसके वक्ष से टकराया, उसके द्वारा निर्मित चमत्कारी जीव गायब हो गए और उसने बादलों में कूदकर अपने आप को पहाड़ के आकार के बराबर बड़ा कर लिया। इसके बाद वह कौरव सेना पर गिर पड़ा।

वह मारा गया, पर भार के नीचे हजारों सैनिक मारे गए।

घटोत्कच की मृत्यु ने अर्जुन की आँख में आँसू ला दिए। युधिष्ठिर और भीम विचलित हो गए, पर आश्चर्यजनक रूप से कृष्ण बहुत खुश दिख रहे थे और उन्होंने खुशी प्रदर्शित करने वाले कुछ शब्द बुदबुदाए।

“यह अजीब नहीं है कृष्ण कि आप उस बात पर खुश हो रहे हैं जिससे हम इतने दुखी हैं?” अर्जुन ने पूछा।

कृष्ण मुस्कराए। “प्यारे मित्र, यह मत भूलो कि मैं यहाँ क्यों हूँ, बुराई पर अच्छाई की जीत सुनिश्चित करने के लिए। कर्ण ने सबसे शक्तिशाली शस्त्र को जो उसे इंद्र से मिला था, तुम्हारे ऊपर प्रयोग करने के लिए रखा था। पर उसको यह घटोत्कच पर प्रयोग करना पड़ा। इसका मतलब तुम सुरक्षित हो। तुम्हारी मृत्यु हमारे लक्ष्य प्राप्ति में बाधक हो सकती थी। दूसरा घटोत्कच था तो दैत्य ही, उसमें सिद्धांतों की समझ नहीं थी। यदि उसे जीवित रहने दिया जाता तो, वह निर्दोषों के लिए घातक होता। क्या मुझे यह जानकर खुश नहीं होना चाहिए कि उसकी मृत्यु दो तरीकों से लाभदायक है?” उन्होंने समझाया।



27

युद्ध की समाप्ति

युद्ध में धीरे-धीरे कौरवों के मुख्य स्तंभ बारी-बारी से मृत्यु को प्राप्त होने लगे। यहाँ तक कि महान भीष्म और बलवान कर्ण भी अपवाद नहीं थे। दुर्योधन जो इस दुर्भाग्यशाली युद्ध की जड़ था, अर्जुन के द्वारा गंभीर रूप से घायल हो गया था। वह जंगल में पड़ा अपनी मृत्यु का इंतजार कर रहा था। अंततः भीम ने दुःशासन के हृदय को फाड़ दिया जिसने हस्तिनापुर के राजदरबार में द्रोपदी के चीरहरण करने का प्रयास किया था।

जैसे ही युद्ध समाप्त हुआ, कृष्ण विजयी पांडव बंधु को लेकर धृतराष्ट्र के पास पहुँचे।

अंधे राजा के महल के सामने पहुँचकर कृष्ण रथ पर तब तक बैठे रहे, जब तक अर्जुन उससे उतरे नहीं। उसके बाद उन्होंने घोड़ों को आजाद किया और फिर वह स्वयं रथ से उतरे। जैसे ही उन्होंने रथ को छोड़ा वह आग से घिर गया।

“यह क्या है?” आश्चर्य से अर्जुन ने पूछा जो कभी उस चमत्कारिक रथ को बहुत पंसद करते थे और जानने के लिए उत्सुक थे।

“क्या इसने अपना कार्य क्षमतापूर्वक नहीं किया अर्जुन? इसमें सैकड़ों विध्वंसकारी बाणों की शक्ति अक्रिय रूप में उपस्थित है। यह मेरे कारण नहीं फटे। जैसे ही मैं इससे उतरा, ये सुप्त शक्तियाँ इकट्ठा हो गईं और रथ राख में बदल गया। यह घटना इस बात को इंगित करती है कि युद्ध समाप्त हुआ!” कृष्ण ने समझाया।

युधिष्ठिर, राजा और रानी दोनों से दूर ही रहे। उनके अलावा अन्य पांडव भी दुर्भाग्यशाली युगल को देखने के लिए उत्साहित नहीं थे। पर कृष्ण ने उनकी तरफ से राजा और रानी से बात की। उन्होंने मधुर शब्दों में इस बात का आश्वासन

भी दिया कि पांडव उन्हें अपने माता-पिता जैसा ही समझेंगे और उनके प्रति कभी दुर्भावना नहीं रखेंगे। उन्होंने गांधारी को याद दिलाया कि दुर्योधन के आशीर्वाद माँगने पर हमेशा कहा कि "सत्य की जीत हो।" उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि उनके बेटे क्रूर और अन्यायी थे। हालाँकि वह युद्ध क्षेत्र में वीरता से लड़ते हुए मारे गए और उन्हें सम्मान भी मिला।

अचानक धृतराष्ट्र ने भीम को बाँहों में लेने की इच्छा प्रकट करते हुए अपनी बाँहें खोल दीं। कृष्ण ने यदि नहीं रोका होता तो वे उनके बाहुपाश में चले जाते। उन्होंने भीम को रोकते हुए भीम के आकार का धातु का पुतला राजा की बाँहों में ढकेल दिया।

कृष्ण के अलावा अन्य किसी को यह आभास नहीं था कि उस पुतले का क्या होगा? जबकि यह लग रहा था कि धृतराष्ट्र बहुत प्रेम से गले मिल रहे हैं, पर उन्होंने इसे कचरे के जैसे मसल दिया।

इसमें धृतराष्ट्र का भी रक्त आ गया और वे सिंहासन से गिर पड़े। उनका क्रोध पिघल गया और वह बच्चों की तरह रोने लगे "यह मैंने क्या किया। मैंने भीम को मार दिया!" उन्होंने प्रायश्चित करते हुए कहा।

"आप चिंता न करें राजन, क्योंकि आपने भीम को नहीं मारा," कृष्ण ने कहा। "आपने अपना गुस्सा धातु के पुतले पर निकाला है।"

राजा बहुत शर्मिंदा हो गए, पर पांडव बंधुओं ने एक के बाद एक उनके सामने साष्टांग दंडवत किया। धृतराष्ट्र ने स्थितियों से समझौता कर उन्हें आशीर्वाद दिया। लेकिल गांधारी के साथ यह अलग था। उसने अंधे पति से सहानुभूति रखते हुए अपनी आँखों को बंद रखा था। उसे इसकी वजह से अतींद्रिय शक्तियाँ प्राप्त हो गईं थी। जब युधिष्ठिर ने उनके चरण छुए तो वह आँखों की पट्टी के निचले भाग से युधिष्ठिर की उँगलियाँ देख सकती थीं और उनकी दृष्टि पड़ने से ही युधिष्ठिर के नाखून मुड़ गए और उँगलियों के सिरे क्षत-विक्षत हो गए।

जल्दी ही कौरव पक्ष की महिलाएँ युद्ध क्षेत्र में जाकर अपने प्रिय लोगों को ढूँढ़ने लगीं। यह हृदय विदारक दृश्य था। पत्नियाँ अपने पति के शव पर और माएँ अपने बेटों के शवों पर रो रही थीं। कुछ स्त्रियाँ रोते हुए शवों से गिद्ध और सियारों को दूर भगा रही थीं। उनके आँसू सूखे हुए रक्त पर गिर रहे थे। ऐसा लग रहा था उनके दुख और चीखों की वजह से आसमान पर काले बादल छा गए थे।



रानी गांधारी भी बाहर आईं पर वे युद्ध क्षेत्र के प्रवेश द्वार पर रुक गईं। उसकी आँखें जरूर बंद थीं, पर वह अपनी आंतरिक दृष्टि से सब कुछ देख सकती थीं। यहाँ तक कि उन्होंने कृष्ण को यह भी बताया कि उनके साथ कौन था। अंत में सधी हुई आवाज में उन्होंने कहा, "कृष्ण मैं जानती हूँ कि आपके पास इस दर्दनाक अंत को बदलने की क्षमता थी, यदि आप अपनी शक्ति का प्रयोग करते तो मुझे अपने सौ पुत्रों से हाथ नहीं धोना पड़ता। अतः आप शाप के हकदार हैं।" कृष्ण शांत रहे। वह रुकीं और अमंगलकारी आवाज में पुनः बोलीं "आज से 36 साल बाद तुम भी बिना अपने किसी पुत्र के और रिश्तेदार के बचोगे। क्योंकि तुमने मेरे रिश्तेदार और पुत्रों को बचाने का प्रयत्न नहीं किया। असंभावित आपदा में वे सभी मारे जाएँगे और इससे तुम भी नहीं बचोगे और लज्जाजनक मृत्यु को प्राप्त होगे।"

जैसे ही रानी गांधारी वहाँ पर उपस्थित लोगों के दिलों में आतंक उत्पन्न करने के बाद शांत हुईं, वैसे ही एक हल्की और रहस्यमयी मुस्कान कृष्ण के ओठों पर आ गई, क्योंकि ऐसी कोई बात नहीं थी जो वे न जानते हों।



अवतार का अंत

हजारों नागरिक, संत, छात्र हस्तिनापुर के सम्राट युधिष्ठिर को बधाई देने पहुँचे। उन्होंने उस बड़े राज्य में अपने निष्ठावान भाइयों की सहायता से राज किया। उन्होंने सत्य और न्याय के आदर्शों का कठोरतापूर्वक पालन किया।

"मुझे मेरे द्वारा खोजे गए नए नगर द्वारका को छोड़े हुए लंबा समय हो गया है। मुझे आज्ञा दीजिए, क्योंकि मेरे वृद्ध माता-पिता मुझे देखने के लिए तड़प रहे होंगे," कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा।

कृष्ण पांडवों के साथ बुरे समय में भी खड़े रहे। उन्होंने उनको विजय दिलाई। विपरीत परिस्थितियों में भी न तो कभी खीझे और न ही कभी अपने प्यारे नगर को छोड़ने के लिए दुख प्रकट किया। तो पांडव कैसे उन्हें उनके घर जाने से रोक सकते थे।

उन्होंने कृष्ण को अश्रुपूर्ण विदाई दी।

कई हलचल भरे दशकों के बाद समय शांति से व्यतीत हो रहा था। युधिष्ठिर ने महान यज्ञ किया जिससे एक बार फिर वह भारतवर्ष के सभी राजाओं के राजा घोषित हुए। इस उत्सव में कृष्ण भी हस्तिनापुर पहुँचे।

कृष्ण ने राक्षसी और चालाक प्रवृत्ति वाले राजाओं को समाप्त किया, जो लोगों के लिए कष्ट प्रदायक थे। अब द्वारका शांति और प्रसन्नता का स्वर्ग थी। कृष्ण के परिवार के सभी सदस्य कृष्ण की मेहनत और त्याग के फल का सुखपूर्वक उपभोग कर रहे थे। उनसे यह आशा की जाती थी कि वह अपने को जीवन के उच्च लक्ष्यों के प्रति समर्पित करेंगे। पर मनुष्य का स्वभाव ऐसा है कि जब वे सुरक्षित होते हैं और शांति एवं खुशहाली सुनिश्चित होती है तो वे स्वयं को अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अनावश्यक रास्तों पर चल पड़ते हैं। कुछ ही लोग शांत वातावरण से अपनी आंतरिक प्रगति कर लाभान्वित होते हैं।

यादवों ने सामान्य व्यक्तियों जैसा व्यवहार किया। वे आलसी, खर्चीले और भोगी हो गए। वे अपना समय द्युतक्रीड़ा, मद्यपान और झगड़ों में व्यतीत करने लगे। सबसे ज्यादा खराब स्थिति उन लोगों की थी जो मूर्खतापूर्ण व्यवहार कर रहे थे और बुजुर्गों तथा संतों के प्रति उनका व्यवहार खराब था।

कृष्ण उनको प्यार करते थे, जो मन में आकांक्षा रखते थे और हृदय से उनके प्रति समर्पित थे। वह यादवों से इस वजह से बिल्कुल भी जुड़ाव नहीं रखते थे कि वे उनके रिश्तेदार हैं और उनके द्वारा अपराध करने पर उनका पक्ष भी नहीं लेते थे।

एक दिन महान संत विश्वामित्र, कण्व और नारद द्वारका की यात्रा पर थे। जैसे ही वे राजमहल में प्रवेश करने वाले थे कि युवा यादवों ने उनका ध्यान ऐसे व्यक्ति की ओर खींचा जो पर्दा किए हुए था और वह गर्भवती युवा स्त्री के समान दिख रहा था।

"हे पवित्र लोग! आप आने वाली घटनाओं को देखने की क्षमता रखते हैं। क्या आप इस बात की भविष्यवाणी कर सकते हैं कि यह स्त्री पुत्र या पुत्री को जन्म देगी?" उन्होंने विनम्रता और उत्सुकता से पूछा।

सभी संत लोग एक बार में उनका खेल समझ गए। उन्हें समझ में आया कि यह उत्पाती युवक उनके ऊपर हँसने के लिए उत्सुक हैं। गुस्से से उनको देखते हुए उन संतों ने घोषणा की कि यह व्यक्ति जो कि स्त्री के भेष में है, के अंदर से जो भी बाहर आएगा, वो यादव कुल के विनाश का कारण बनेगा।

सभी युवा घबरा गए और वहाँ से दूर हट गए। क्रोधित संत कृष्ण से मिलने के बाद ही शांत हुए। पर उन्होंने कृष्ण को उस दुर्भाग्यपूर्ण घटना और अपने दिए शाप के बारे में बताया।

कृष्ण जानते थे कि यह तो होना ही था, क्योंकि गांधारी के शाप के फलीभूत होने का समय आ गया था, क्योंकि गांधारी ने अत्यंत क्रोधित होकर 36 साल बाद कृष्ण के कुल के विनाश का शाप दिया था।

प्रलय का दिन नजदीक था।

वह युवा व्यक्ति जो स्त्री के वेष में था और कोई नहीं बल्कि कृष्ण का पुत्र साम्ब था। उसके पेट से एक कड़ा टुकड़ा बाहर आया। वह और उसके दोस्त उसको समुद्र किनारे ले गए और पत्थर से घिसने लगे, जिससे कि इसका शस्त्र के

रूप में प्रयोग न किया जा सके। वह घिस के इतना छोटा हो गया कि उँगलियों से पकड़ना मुश्किल हो गया। तो उन्होंने अंत में बचे इस बेकार टुकड़े को समुद्र में फेंक दिया।

उसके घिसने के कारण उत्पन्न चूर्ण जैसा पदार्थ लहरें बहा ले गईं। पर फौरन ही किनारे पर उसे वापस फेंक दिया। उस चूर्ण से विचित्र घास उत्पन्न हुई जो जल्दी ही बढ़ने लगी। एक दिन दोपहर बाद जब द्वारका के लोग नाच-गा रहे थे, एक विचित्र बात हुई। एक बहुत बड़ा वायु चक्रवात जमीन से टकराया, फिर यह ऊपर की ओर उठा। सभी ने उसकी ओर देखा। पूरा आसमान चमकते हुए एक घूमती हुई चीज से ढँक गया। यह धीरे-धीरे ऊपर बढ़ा और छोटा होते-होते उनकी नजरों से ओझल हो गया।

लोग इस दृश्य से चकित हो गए। कुछ ही लोग यह जानते थे कि सुदर्शन चक्र जो एक चमत्कारिक और चेतनायुक्त शस्त्र था, जिससे कृष्ण ने सत्य की रक्षा कर बुराई का नाश किया था। वह धरती को छोड़ रहा था।

और कम लोग इस बात का अर्थ समझे कि कृष्ण भी जल्दी ही चक्र के रास्ते जाएँगे।

उस दिन के बाद से अपशकुन होने लगे। चूहे सोते हुए लोगों के लहराते बाल, दाढ़ी और मूँछों को कुतरने लगे। हंस, उल्लू की तरह बोलने लगे और बकरी, सियार के जैसे। कुत्ते से बिल्ली और गाय से घोड़े पैदा होने लगे।

कभी-कभी कुछ लोगों ने दो अजीब आकृतियाँ देखीं। एक स्त्री और एक पुरुष अँधेरे में घूम रहे हैं। वे प्रकट और लुप्त होते रहते थे और इस क्रिया के बीच में आभूषण आदि की चोरी कर लेते थे।

अधिकांश यादव अपनी तामसिक क्रियाओं में इतने व्यस्त थे कि उन्हें इन घटनाओं का भान ही नहीं था। एक दिन कृष्ण ने यादवों से कहा, "बड़ा ही बुरा समय आने वाला है। चलो पवित्र प्रभास में एकांतवास करके कुछ समय व्यतीत करें।"

यादव अपने दिमाग से इतने कुंद हो गए थे कि उन्होंने इस प्रस्ताव को भी आनंद का मार्ग ही समझा।

बड़ी मात्रा में भोजन और पेय पदार्थ लेकर प्रभास की ओर चल पड़े।



बहुत पहले एक बार जब चंद्र देवता ने अपनी चमक खो दी थी, तो उन्हें समुद्र में इस स्थान पर नहाने को कहा गया था। ऐसा करने पर उनकी प्रभा या चमक लौट आई थी। इसीलिए इसका नाम 'प्रभास' पड़ा। यह हरे जंगल और समुद्र के बीच का सुंदर स्थान था।

ऐसे स्थान पर यादवों ने प्रार्थना और ध्यान करने की बजाय पहुँचते ही मद्यपान शुरू कर दिया।

पुराने समय के दो योद्धा सात्यकी और कृतवर्मा के बीच विवाद शुरू हो गया। नशे में चूर होने के कारण उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि वे क्या कर रहे हैं। अचानक सात्यकी ने तलवार निकाली और कृतवर्मा का सिर काट दिया। कृतवर्मा के मित्रों ने सात्यकी पर बरतन फेंकना शुरू कर दिया। सात्यकी की मृत्यु हो गई। पर तब तक यादव आपस में उद्देश्यहीन लड़ाई में व्यस्त हो गए। यह धीरे-धीरे बहुत हिंसक हो गई।

कृष्ण ने अपने परिवार के पतन को दयापूर्वक देखा। उसके बाद घृणा से भरकर उन्होंने घास की एक पत्ती को उखाड़ा, वह उनके हाथ में आकर लौहदंड जैसी कठोर हो गई। तुरंत ही किनारे पर स्थित पूरी घास लौहदंड में बदल गई। यह खतरनाक घास उस चूर्ण से उत्पन्न हुई थी, जो युवा यादवों ने समुद्र में बहा दी थी। पागल हुए यादवों ने इसका प्रयोग शस्त्र के रूप में करना प्रारंभ कर दिया। रुदन करती हुई स्त्रियों के सामने वो एक-दूसरे के ऊपर इस शस्त्र के द्वारा आक्रमण करने लगे। और एक के ऊपर एक मृत होकर गिरने लगे।

बलराम शांतिपूर्वक उस स्थान को छोड़कर चले गए। कृष्ण ने हस्तिनापुर से अर्जुन को आने का संदेश भेजा और अपने कुछ विश्वस्त साथी जो अभी भी होश में थे, की स्त्रियों को द्वारका वापस ले जाने को कहा। उन्होंने बलराम को पेड़ के नीचे विश्राम करते हुए देखा। उनकी आत्मा स्वर्ण अजगर के रूप में समुद्र में प्रवेश कर गई। अब बलराम वहाँ नहीं थे।

चारों ओर शांति थी। कृष्ण झाड़ियों के बीच में एक पेड़ का सहारा लेकर विश्राम करने लगे। जल्दी ही वहाँ पर 'जारा' नाम का एक शिकारी आया। कृष्ण का सिर छुपा हुआ था और शिकारी को उनके पैर हिरण के कान जैसे लगे। कुछ समय पहले उसको धातु की तेज धार वाली वस्तु जो मछली के अंदर से प्राप्त हुई थी, उसने इसे अपने बाण के अग्र सिरे पर लगाया था। यह कहने की आवश्यकता

नहीं है कि यह उसी विनाशकारी वस्तु का अंतिम टुकड़ा था, जो उन यादवों ने समुद्र में फेंक दिया था।

जारा ने बाण चलाया और अपने शिकार की ओर लपका। जैसे ही उसने यह देखा कि बाण कृष्ण के तलवे पे लगा है, वह भयग्रस्त हो गया। शिकारी रोने लगा।

कृष्ण मुस्कराए, उन्होंने जारा को सांत्वना और आशीर्वाद दिया, क्योंकि उसने उनके इस मानव अवतार को समाप्त करने में सहायता की। उनकी आत्मा प्रकाश स्तंभ के रूप में नीले आसमान में विलीन हो गई।

जल्द ही अर्जुन द्वारका पहुँचे। वहाँ उन्होंने जो दृश्य देखा, उसको वो बता नहीं सकते थे। पर उनको कुछ कर्तव्य पूरे करने थे, अपने कष्ट को अपने तक रखते हुए उन्होंने कृष्ण का अंतिम संस्कार किया। बलराम और अन्य यादव शोकग्रस्त कृष्ण के माता-पिता अर्जुन के पहुँचने के पश्चात जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त हो गए।

अर्जुन सभी स्त्रियों व बचे हुए पुरुष और बच्चों के साथ हस्तिनापुर लौटे। जैसे ही वे कृष्ण द्वारा निर्मित इस भव्य नगर से बाहर निकले। समुद्र से उत्पन्न हुई एक बड़ी लहर ने उस नगर को डुबो दिया। दूर से असहाय और आश्चर्यचकित अर्जुन उफनती लहरों को देखते रहे। उन्होंने गहरी साँस ली और यात्रा में आगे बढ़ गए।



शब्दकोश

अभिमन्यु – अभिमन्यु का अर्थ निर्भय और प्रकाशयुक्त। वह अर्जुन और सुभद्रा के पुत्र थे। कौरवों ने चक्रव्यूह का निर्माण किया था। बहादुर राजकुमार चक्रव्यूह में प्रवेश करना तो जानते थे, पर बाहर आना नहीं। वास्तव में कौरवों ने आतुर होकर युद्ध के सभी नियमों को तोड़ते हुए उसका वध किया था। अभिमन्यु की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी उत्तरा ने परीक्षित को जन्म दिया जो पांडवों के सिद्धांतों पर चले।

अग्नि– अग्नि देवता मानव जगत और स्वर्ग के बीच में महत्वपूर्ण कड़ी थे। वह सबसे पुराने ग्रंथ ऋग्वेद संहिता में बहुत पूजनीय माने गए। उनके तीन पक्ष मनुष्य से निकटतम संबंध रखते हैं– सूर्य, तड़ित और अग्नि। इन्हीं के मार्गदर्शन में ऋषि यज्ञ करते थे।

ऐरावत– बलवान हाथी जिसकी उत्पत्ति देवताओं और राक्षसों के बीच समुद्र मंथन से हुई थी। वह इंद्र का वाहन बने, जो राजाओं के राजा थे। ऐरावत को सभी हाथियों का पूर्वज माना जाता है।

अक्रूर– यादव कुल के सबसे वरिष्ठ सदस्य थे। इस कुल में कृष्ण पैदा हुए, वह विष्णु के महान भक्त थे और वह कृष्ण के रहस्य को जानते थे।

अर्जुन– पांडव बंधुओं में युधिष्ठिर और भीम के बाद तीसरे स्थान पर थे। वह अतुलनीय धनुर्धारी और दयालु हृदय के राजकुमार थे। कृष्ण के प्रति पूर्णतया समर्पित थे और गीता का ज्ञान प्राप्त करने का उन्हें सौभाग्य मिला।

असुर– देवता और राक्षस धरती पर रहने वाले सबसे पहले जीव थे। असुर घमंडी और क्रूर थे। वे धरती पर अपना प्रभुत्व जमा कर देवताओं को अपना दास बनाना चाहते थे। इन दोनों के बीच लंबे समय तक संघर्ष चला। ऐसा माना जाता है कि राक्षसों के विलुप्त होने के बाद भी उनकी आत्मा मनुष्य में प्रवेश करके समाज में हलचल मचाती है।

अश्वत्थामा– द्रोणाचार्य जो पांडव और कौरव दोनों के गुरु थे, का पुत्र था। अश्वत्थामा ने अपने पिता से महत्वपूर्ण शस्त्रों को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की थी। पर वह उनके प्रयोग में चैतन्य नहीं था। अंततः अर्जुन के हाथों हार करके वह जंगल में चले गए।

बलराम– वासुदेव और रोहिणी के पुत्र कृष्ण के बड़े भाई थे। इन्हें बलभद्र और बलदेव के नाम से जाना जाता है।

भीम– युधिष्ठिर के बाद पांडवों के दूसरे नंबर के भाई थे। दिखने में भीमकाय थे और गदा चलाने में ये अतुलनीय थे। कौरवों के द्वारा हत्या के कई प्रयासों के बाद भी वह बच गए थे।

भीष्मक– रुक्मिणी के पिता थे।

देवकी– कृष्ण की माँ और विदर्भ के राजा देवक की पुत्री थी।

दृष्टद्युम्न– द्रुपद ने एक यज्ञ का आयोजन कर ऐसे पुत्र की कामना की जो उनका अपमान करने वाले द्रोणाचार्य का विनाश कर सके। अग्नि क्रिया से उत्पन्न हुए दृष्टद्युम्न और द्रोपदी भाई-बहन के रूप में प्रकट हुए।

धृतराष्ट्र– कौरवों के पिता और अंधे राजा।

ध्रुव– राजा उत्तानपाद के पहली पत्नी सुनीति से उत्पन्न पुत्र थे। राजा की द्वितीय पत्नी सुरुचि ने एक दिन राजा की गोद में बैठने की इच्छा करने पर उन्हें दुत्कार दिया, क्योंकि वहाँ उनका पुत्र उत्तम बैठता था। माँ की सलाह पर ध्रुव ने भगवान की आराधना की और आशीर्वाद प्राप्त किया। मृत्यु के पश्चात भी वह ध्रुव तारे के रूप में हमेशा रहेंगे। इस प्रकार से ध्रुव ने अपने आप को अमर बना लिया।

द्रोपदी– यह अग्नि से उत्पन्न द्रुपद की प्रार्थना का फल थीं, जो पांचाल राज्य के राजा थे। वह एक अलौकिक क्षमता की धनी थीं जो कौरवों के दंभ का विनाश करने के लिए नीचे आई थीं। यह उनकी इच्छाशक्ति ही थी जिसने पांडवों को विजय दिलाई। जब कौरवों के दरबार में दुःशासन उनका अपमान कर रहा था और वहाँ उपस्थित भद्रजन कुछ भी करने में सक्षम नहीं थे, तब उनके द्वारा की गई प्रार्थना के उपरांत हुई उनकी रक्षा आज भी मुश्किल में पड़े मनुष्यों को भरोसा दिलाती है।

द्रोणाचार्य— भारद्वाज ऋषि के पुत्र जो पांडव और कौरवों के गुरु थे।

दुःशासन— धृतराष्ट्र और गांधारी का द्वितीय पुत्र और दुर्योधन का अनुज जिसने द्रोपदी का अपमान किया था। युद्ध के अंत में भीम ने उनका वध किया था।

दुर्योधन— धृतराष्ट्र और गांधारी का सबसे बड़ा पुत्र और कौरव सेना का सेनापति।

घटोत्कच— हाथी जैसा सिर वाला व्यक्ति जिस पर बाल न हों। वह भीम और हिडिंबा जो राक्षसी कुल की थीं, के पुत्र थे।

इंद्र— देवताओं के राजा।

जरासंध— मगध के राजा वृहद्रथ जिन्हें ऐसा चमत्कारिक फल मिला जिसे रानी द्वारा खाने पर उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी। क्योंकि उनकी दो रानियाँ थीं तो उन्होंने आधा-आधा फल दोनों को खाने को दिया। जिसके फलस्वरूप दोनों ने लंबाई में बँटे हुए आधे-आधे भाग को जन्म दिया। दुखी होकर रानियों ने उन्हें श्मशान स्थल पर फेंक दिया। अलौकिक शक्ति वाली स्त्री जरा ने इन दोनों भागों को जोड़कर उसको एक कर दिया जो आगे चलकर के मगध का राजा बना और तानाशाह के रूप में जाना जाता है।

जयद्रथ— धृतराष्ट्र के दामाद और सिंधु के राजा।

कालयवन— यादवों का अजेय शत्रु।

कालिया— बलवान अजगर जिसे कृष्ण ने अपना पालतू बनाया।

कंस— मथुरा का क्रूर राजा और कृष्ण का शत्रु।

कृपाचार्य— कौरव सेना के अनुभवी सेनापति।

कृष्ण— विष्णु के अवतार।

उग्रसेन— कंस के पिता।

शिव— महान अलौकिक शक्ति का एक पक्ष जिसका संबंध प्रलय या विनाश से है। अन्य दो पक्ष विष्णु और ब्रह्मा।

विष्णु— अलौकिक सत्ता का मुख्य पक्ष। निर्माण के पीछे की इच्छाशक्ति।

महामाया— दैवीयशक्ति का विस्तार।

मायादानव– पराभौतिक, अलौकिक वास्तुशिल्पी।

अम्बा– दैवीयशक्ति का विस्तार।

मुचुकुंद– राजा मांधाता के पुत्र। उन्हें यह वरदान प्राप्त था कि यदि उनकी निद्रा में कोई विघ्न डालेगा तो वह राख में बदल जाएगा।

नकुल– पांडवों के चौथे भाई। महान योद्धा। युद्ध के एक पक्ष में उसने भीम के सारथी की तरह कार्य किया।

नारद– विष्णु के भक्त जो ऋषि बनने के रास्ते पर चले और देवर्षि कहलाए। वह नटखट देवता के रूप में जाने जाते हैं, जिन्होंने दैवीय कार्यों के लिए यह भूमिका अपनाई।

पांडु– चंद्रवंश के राजा और हस्तिनापुर के अल्प समय के लिए बने राजा, और पांडवों के पिता थे।

गर्ग– यादवों के कुल पुरोहित।

यदु– चंद्रवंश के राजकुमार। राजा ययाति और देवयानी के पुत्र।

देवकी– कंस की बहन।

पूतना– वह राक्षसी जिसने दूध पिलाने के बहाने कृष्ण को मारने की चेष्टा की।

गांधारी– गंधर्व की राजकुमारी वह जो स्थान आज अफगानिस्तान माना जाता है और धृतराष्ट्र की पत्नी।

कुंती– राजा शूर की पुत्री और कृष्ण के पिता वासुदेव की बहन।

रावण– लंका का राक्षस राजा। भारत के प्रथम ग्रंथ रामायण का खलनायक।

रोहिणी– बलराम की माँ, कृष्ण की सौतेली माँ।

रुक्मिणी– विदर्भ के राजा की पुत्री जिन्होंने कृष्ण से विवाह किया।

रुक्मी– विदर्भ का राजकुमार रुक्मिणी का बड़ा भाई।

संदीपनी– पूजनीय संत और गुरु जिनका आश्रम उज्जैन में है। यह पहले अवंतिपुर के नाम से विख्यात था। कृष्ण और बलराम के गुरु थे।

सहदेव– पांडवों में सबसे छोटे और तलवारबाजी में निपुण।

सात्यकी– कृष्ण के प्रिय सारथी।

शकुनि– गंधर्व के राजकुमार। कौरवों के शैतान बुद्धि वाले मामा।

शल्व– माद्री के भाई (जो पांडु की द्वितीय पत्नी थीं) और मद्र के राजा थे।

साम्ब– कृष्ण के पुत्र और उनकी माँ का नाम जामवंती था।

शिशुपाल– चेदि राज्य का घंमडी शासक। कृष्ण का पक्का शत्रु था। कृष्ण ने उनकी सौ गलतियाँ माफ करने की शपथ ली थी। इसके बाद की गई गलती पर सुदर्शन चक्र द्वारा कृष्ण ने उनका वध किया।

सुदामा– ऋषि संदीपनी के शिष्य जो एक गरीब ब्राह्मण थे और कृष्ण बलराम के मित्र थे।

तृणावर्त– कंस का वफादार राक्षस। कंस ने इसकी नियुक्ति कृष्ण को मारने के लिए की थी।

वरुण– मुख्य दैवीय शक्ति, जल के देवता।

विदुर– धृतराष्ट्र के सौतले भाई, हस्तिनापुर के राजदरबार के दयालु और ईमानदार सदस्य जिन्होंने अंधे राजा को हमेशा सही सलाह दी।

विश्वामित्र– एक राजा जो ऋषि बने इसलिए राजर्षि कहलाए। और अंततः गहन साधना के फलस्वरूप ब्रह्मर्षि बने।

विश्वकर्मा– स्वर्ग के वास्तुशिल्पी और कलाकार जो कभी-कभी मनुष्य के कार्यों में भी सहयोग करते थे।

वसुदेव– कृष्ण के पिता। इसीलिए कृष्ण वासुदेव कहलाए।

यज्ञसेनी– द्रोपदी का एक नाम क्योंकि वह यज्ञ से उत्पन्न हुई और यज्ञ करने वाले राजा का नाम यज्ञसेन था।

यशोदा– नंद की पत्नी और कृष्ण की धाय माँ।

युधिष्ठिर– पांडवों के सबसे बड़े भ्राता।

लिटिल बड्‌र्स, दिल्ली द्वारा शब्द संयोजन तथा एजुकेशनल स्टोर्स, गाजियाबाद (उ.प्र.) द्वारा मुद्रित